चन्दामामा
फरवरी १९६८
75 P

Chandamama
Press
VADAPALANI
MADRAS-26
OFFERS YOU...
FINEST PRINTING.-
Equipped with
PHOTO GRAVURE
KLIMSCH CAMERA
VARIO KLISCHOGRAPH-
-BLOCK MAKING
and a
host of Others....

इसके गुण अनेक हैं ....
डाबर च्यवनप्राश
गुणों में श्रेष्ठ, स्वास्थ्यवर्द्धक अष्टवर्गयुक्त पौष्टिक रसायन है।
इसका सेवन बच्चे, बूढ़े और जवान हर मौसम में करते हैं।
डाबर (डा. एस. के. बर्म्मन) प्रा. लि., कलकत्ता - २६

फरवरी १९६८

★

विषय - सूची

★

एक प्रति ०-७५ पैसे वार्षिक चन्दा रु. ९-००

अपने
मुन्ने को
सर्दी-ज़ुकाम से
परेशान
होने न दें

फ़ौरन आराम के लिये इसे विक्स वेपोरब मलिये।

सर्दी-ज़ुकाम से मुन्नेका बुरा हाल है: नाक और आँखों से पानी बह रहा है, गला बैठ गया है, सांस लेने में तकलीफ़ हो रही है। फ़ौरन इसके नाक, गले, छाती और पीठ पर विक्स वेपोरब मलिये और आराम से सुला दीजिये। रातभर जबकि आपका मुन्ना मीठी नींद सोता रहेगा, विक्स वेपोरब की गरम भाप अपना असर करती रहेगी। सुबह तक सर्दी का असर जाता रहेगा और आपका मुन्ना हमेशा की तरह हंसता, खेलता और चिहकता नज़र आयेगा।

रातों-रात सर्दी-ज़ुकाम से आराम पहुंचाता है।

जरूरी सूचना

'चन्दामामा' पत्रिका से संबंधित चन्दा, एजेन्सी डिपाजिट, इंडेंट का मूल्य, विज्ञापन मूल्य आदि निम्न लिखित पते पर भेजें।

डाल्टन एजेन्सीस्

"चन्दामामा बिल्डिंग्स"

वडपलनी :: मद्रास - २६

FALCON
75
फ़ालकन
பால்கன்
75

चन्दामामा
संचालक : चक्रपाणी
तृष्णा और महत्त्वाकांक्षा में बड़ा भेद है ! महत्त्वाकांक्षा अच्छे कार्य के लिए होती है और तृष्णा बुरे काम के लिए । लालच एक प्रकार की तृष्णा है । लालच में लोग जब अपने लाभ के लिए दूसरों की हानि करते हैं तो उनको प्रायः नीचा देखना पड़ता है...यह सत्य इस मास की "आश्चर्य की हड्डी" कहानी में निरूपित हुआ है ।
वर्ष : १९ फरवरी १९६८ अंक : ६
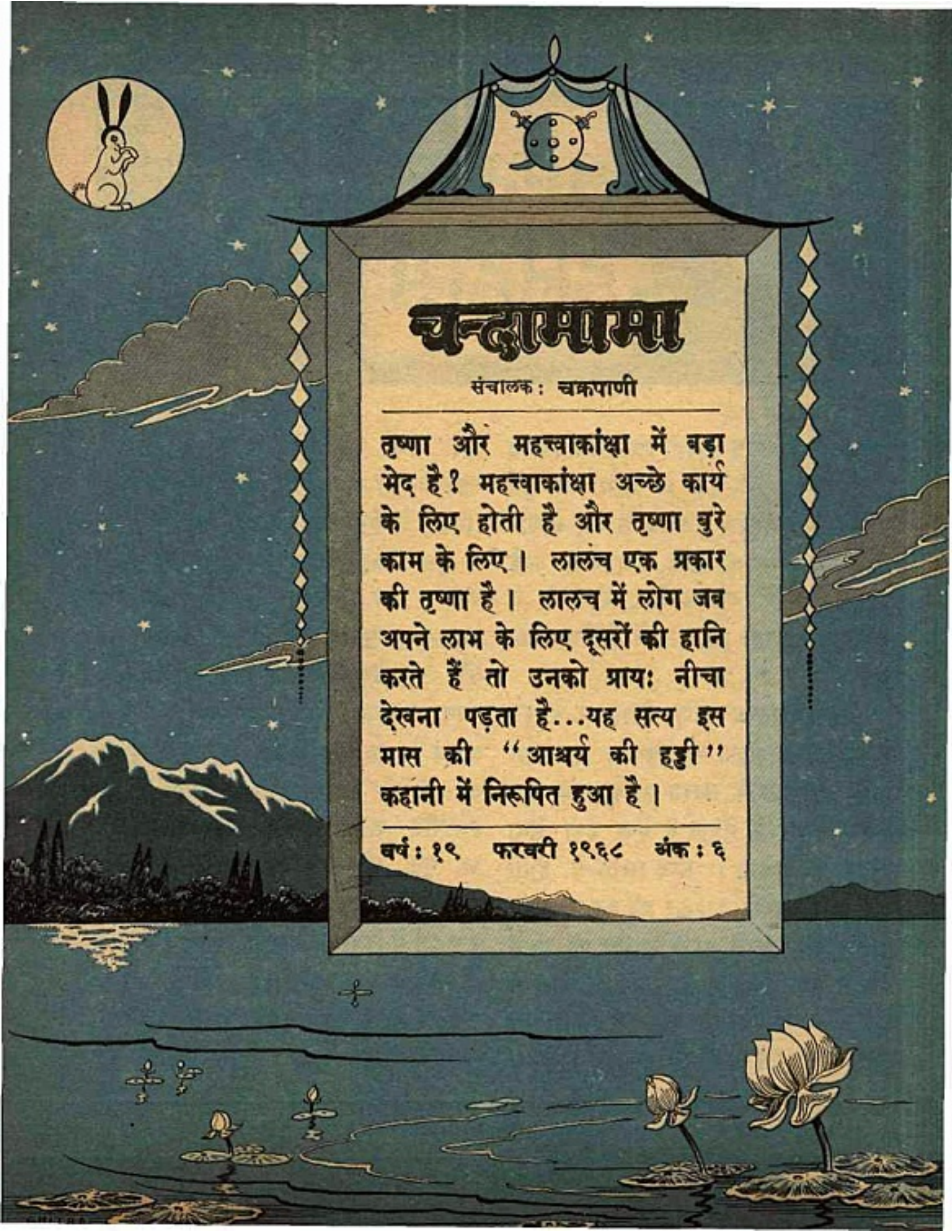
भारत का इतिहास

वाड़ गाँव के पास अंग्रेज़ों को अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। सन्धि की शर्तें थीं—बम्बई सरकार १७७३ के बाद आधीन किये गये प्रान्त को छोड़े, बंगाल से आई हुई सेनाओं को वापिस भेजे, भोज से जो आमदनी हो रही थी, उसमें सिन्धिया को हिस्सा दे।

गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिन्ग्स ने इस सन्धि को अस्वीकृत कर दिया। इस बार बाकी कौन्सिल के सदस्य उसके साथ थे। कर्नल गोडार्ड के नेतृत्व में एक बड़ी सेना बंगाल से निकली। मध्य भारत से होती हुई, १५ फरवरी १७८१ को वह अहमदाबाद पहुँची, इससे पहले बस्सीन को उसने वश में कर लिया था। १७८१ अप्रैल में इस सेना ने पूना पर आक्रमण किया, पर वहाँ उसको हार खानी पड़ी। वारेन हेस्टिन्ग्स द्वारा भेजी गई सेना ने ३ अगस्त को ग्वालियर को जीता। १६ फरवरी को शिवपुरी (सिप्री) में सिन्धिया को हरा दिया।

इन विजयों के कारण अंग्रेज़ों की धाक बढ़ी। उस सिन्धिया ने, जो तब तक महाराष्ट्र समुदाय का मुख्य सरदार था और उत्तर देश में अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था, अब अपना पैंतरा बदला। वह अब अंग्रेज़ों से दोस्ती करने की सोचने लगा। उसने अंग्रेज़ों से बातचीत करके उनसे वादा किया कि वह पूना की सरकार और उनमें सन्धि करवायेगा। उसने यह वचन १३ ओक्टोबर १७८१ में दिया था और मई १७, १७८२, में सलबै के पास सन्धि हुई। परन्तु फरवरी २६, १७८३ तक फड़नवीस ने उस पर हस्ताक्षर नहीं किये। इस सन्धि के

अनुसार साल्सेट पर अंग्रेज़ों का अधिकार स्वीकृत कर लिया गया। माधव राव नारायण राव को, पेशवा मान लिया गया, रघोबा को पेन्शन दी जाने लगी। यमुना के पश्चिम का भाग सिन्धिया को वापिस दे दिया गया और जो कुछ प्रान्त, आर्काट के नवाब से हैदर अलि ने जीत लिया था, वह उसे दे दिया जाय, यह उस सन्धि में था पर हैदर अलि का उस सन्धि से कोई सम्बन्ध न था।

इस प्रकार, इस सन्धि के अनुसार युद्ध से पहिले जो परिस्थिति थी वह पुनः स्थापित कर दी गई। अंग्रेज़ों को बहुत नुक्सान हुआ था और इस सन्धि से भी उनको कोई विशेष लाभ नहीं हुआ था। इसके कारण वारेन हेस्टिन्ग्स को कई अनुचित आर्थिक कदम उठाने पड़े, तो भी अंग्रेज़ों का इस देश में साम्राज्य के चलने का कारण यह बना। इसके कारण महाराष्ट्र से उनके सम्बन्ध बीस साल तक अच्छे बने रहे। इस समय में वे फ्रेन्चों से और टीपु सुल्तान जैसे विरोधियों से निश्चिन्त हो, निबट सके। निजाम और अवध के नवाबों को काबू में रख सके।

इतना सब होने पर भी, यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि सलबै सन्धि के कारण अंग्रेज़ों के हिन्दुस्तान में पैर जमे। अंग्रेज़ एक विषम परिस्थिति से, जैसे तैसे बाहर तो निकल गये थे पर उनकी महाराष्ट्र से और टीपु सुल्तान से तब भी नहीं बनी थी। पंजाब, नेपाल, बर्मा में उनसे लोहा लेने के लिए, नई नई शक्तियाँ पनपती जा रही थीं।

हेस्टिन्ग्स के चले जाने के बाद कार्नवालिस के आने से पहिले, मकफर्सन गवर्नर जनरेल था। वह असमर्थ था। यही नहीं ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने एक कानून भी पास किया था, जिसके अनुसार कम्पनी के कर्मचारियों को देशीय राजनैतिक परिस्थितियों में दखल करने की मनाई कर दी गई थी। इसी कारण, कार्नवालिस के समय में भी कोई ऐसी कार्यवाही नहीं हुई, जिसकी कोई विशेष राजनैतिक महत्ता हो।

महाराष्ट्र के संगठन का क्या हुआ? यह साजिश, फूट वगैरह से जब विघटित हो रहा था तो रानी अहल्याबाई, महदाजी सिन्धिया, नाना फड़नवीस आदि ने इसे उभारा। अहल्याबाई, अपने शासन में बड़ी कुशल मानी जाती थी। उस समय की राजनीति में उसने विशेष भूमिका अदा की थी। १७९५ में जब अहल्याबाई की मृत्यु हो गई, तो तुकोजी होल्कर इन्दौर की गद्दी पर आया। यह अच्छा योद्धा तो था, पर राजनीति में उतना तेज़ नहीं था। १७९७ में इसके मर जाने के बाद इन्दौर में अराजकता फैल गई।

आश्चर्य की हड्डी

सुवर्ण देश में सुचन्द्र नाम का राजा राज्य किया करता था। उसने पचास वर्ष राज्य किया और आस पास के प्रदेशों को उसने अपने राज्य में मिला लिया। पर तब भी उसकी राज्य की तृष्णा न गई।

एक दिन राजा शिकार के लिए गया। अपने देश के उत्तर के देश के सीमावर्ती पहाड़ों में वह एक हरिण का पीछा करता बहुत दूर चला गया। आखिर वह हरिण अदृश्य हो गया। घोड़ा थक गया। राजा भी थक गया। दुपहर हो गई थी। राजा एक पेड़ के नीचे खड़े होकर, उस ओर देखने लगा, जिस ओर हरिण गायब हो गया था।

राजा ने जो उस तरफ प्राकृतिक दृश्य देखा, वह चकित रह गया। उत्तर की ओर बड़े बड़े ऊँचे ऊँचे पहाड़ थे और अपने और उस पहाड़ के बीच उसने हरा हरा, सुहावना प्रान्त देखा। जिधर देखो उधर बड़े बड़े पेड़, कालीन-सी घास। और बीच में कल कल करता पहाड़ी नाला। दूरी पर, मन्दिर मे देवदारू के वृक्ष। एक तरफ एक छोटा, सुन्दर नगर राजा को दिखाई दिया।

राजा जब इस दृश्य को निहारने में तन्मय था, तो उसके सामन्त उससे आ मिले। राजा ने उनकी ओर मुड़कर कहा— मैं नहीं जानता था कि मेरे प्रदेश में इसी सुन्दर जगह है।

"महाराज, जो प्रदेश आपको दिखाई दे रहा है, वह हमारे राज्य में नहीं है। आप जहाँ खड़े हैं वह ही हमारे राज्य की सीमा है।"

रामगोपाल

राजा चौंका, उसने कहा—"तो यह हमारा राज्य नहीं है?"

"नहीं महाराज, वह एक स्वतन्त्र राज्य है। इसमें गाँववाले ही रहते हैं।" सामन्तों ने कहा।

राजा ने दान्त पीसकर कहा—"मैं गाँववाले और स्वतन्त्र राज्य? आज ही सेना भेजकर, यह सारा प्रदेश जो हमें दिखाई दे रहा है, अपने राज्य में मिला लो।"

तुरत राजा की आज्ञा कार्यान्वित कर दी गई। अत्यन्त सुन्दर गाँववालों के स्वतन्त्र राज्य में सुचन्द्र की सेना घुस आई और और वहाँ विध्वंसक कार्य करने लगी। सैनिकों ने अपने शोर शराबे से वहाँ की शान्ति भंग की। निर्मल नालों में वहाँ के लोगों का खून भी बहने लगा।

सुचन्द्र का ख्याल था कि सैनिकों के घुसते ही वे गाँववाले अपनी स्वतन्त्रता उसे भेंट में दे देंगे, पर वैसा हुआ नहीं। तीन दिन युद्ध हुआ। उनका नगर श्मशान-सा हो गया, पर तब भी उन्होंने हार नहीं मानी। दिन भर जो हथियार उनके पास थे, उन्हें लेकर वे लड़ते रहे। स्त्रियाँ और बच्चों ने भी प्रण किया कि वे देश के लिए अपने प्राण तक दे देंगे। रात होते ही, वे उन लोगों की मरहम पट्टी करते, जो दिन में युद्ध में घायल हो जाते थे। मरे हुओं को गाड़ देते और सवेरा होते ही फिर वे युद्ध के लिए तैयार हो जाते।

चौथे दिन सवेरे सुचन्द्र अपने डेरे में बैठकर उस रोज़ होनेवाले युद्ध के बारे में सोच रहा था पहरेदारों ने आकर बताया कि उसे एक बूढ़ा देखने आया था।

राजाने उनसे कहा कि अगर वह कोई गुप्तचर नहीं हो, तो उसे भेज दो।

बूढ़ा बड़ा कमजोर था। उसके पास कोई हथियार न था। इसलिए पहरेदारों ने उसे अन्दर जाने दिया।

"कौन हो तुम? क्या काम है? तुम से ज्यादह देर तक बात करने का समय नहीं है। हम एक जरूरी बात पर सोच रहे हैं।" राजा ने कहा।

"मैं आपके दर्शन के लिए आया हूँ। महाराज।" वृद्ध ने कहा।

"शत्रु देश के हो....गाँव के हो?" राजा ने पूछा।

"नहीं महाराज! मैं आपका ही नागरिक हूँ। मेरी झोंपड़ी यहीं पास है।" वृद्ध ने कहा।

"तो तुम क्या चाहते हो?" राजा ने पूछा।

वृद्ध ने एक हड्डी का टुकड़ा दिखाया और उसने कहा कि यदि राजाने इसके बराबर सोना दिया तो उसे कुछ नहीं चाहिए था।

राजा ने वृद्ध के हाथ में एक हड्डी देखी। "इतने का सोना माँग रहे हो! यह रत्ती भर भी नहीं होगा। यह सोने का सिक्का ले लो और जाओ।" उसने एक मुहर दिया।

"नहीं, आप इस हड्डी को तुल्वाकर जितना हो उतना सोना दीजिए महाराज, मैं लालची नहीं हूँ।" वृद्ध ने कहा।

वृद्ध को सन्तुष्ट करने के लिए, राजा ने एक छोटी तराजू मँगवाई। उसने एक तरफ वह हड्डी का टुकड़ा रखवाया और दूसरी तरफ सोने का सिक्का। हड्डी का टुकड़ा ही भारी था। राजा को आश्चर्य हुआ। उसने और मुहरें रखवाईं। पर

तब भी हड्डी ही भारी रही। उसने अपनी सारी मुहरे रख दीं, अपने आभूषण रख दिये, तब भी हड्डी का पलड़ा ही भारी रहा।

"अगर आपके पास इसके बराबर सोना न हो, तो रहने दीजिये। महाराज, मैं चला जाऊँगा।" वृद्ध ने कहा।

"ठहरो, इसमें कोई जरूर धोखा धड़ी है। इतनी छोटी हड्डी कैसे इतनी भारी हो सकती है!" राजा ने कहा।

"महाराज, यह हड्डी लालच है। संसार का सारा सोना भी अगर आप रखेंगे, तो यह हड्डी भारी साबित होगी।" वृद्ध ने कहा।

"तो इस लालच के बराबर भारी इस संसार में कुछ नहीं है?" राजा ने चकित होकर पूछा।

वृद्धने पास खड़े सिपाही की ओर देखा। उसने तराजू पकड़ी। उसने अपने खून की बून्द से हड्डी तोली। जिस पलड़े पर हड्डी रखी थी, वह ऊपर उठ गई।

"महाराज, मैं वृद्ध हूँ। मेरा खून हल्का हो गया है। अगर यह ही, बच्चों का और युवकों का खून हो तो वह कितना भारी होगा....मुझे बताइये।" कहता वृद्ध बाहर चला गया।

राजा थोड़ी देर तक चकित रहा। उसे काठ-सा मार गया। आखिर उसने कहा—"युद्ध रोको, सैनिकों को वापिस बुलाओ।"

उसी दिन युद्ध रोक दिया गया। राजा अपनी सेना के साथ अपने नगर वापिस चला गया। फिर उसने उस देश पर आक्रमण नहीं किया।

शिथिलालय

पूर्वी घाटी के वन प्रान्तों में शबर जाति के बहुत-से गाँव कभी हुआ करते थे। उनमें कुम्भार टीले गाँव का शिवाल सरदार था। उसकी उम्र सब से अधिक थी। उसके अट्ठारह वर्ष से बड़ा शिखिमुख नाम का लड़का था। पिता उसको बहुत चाहता था...क्योंकि उसका जन्म तब हुआ था, जब वह अधेड़ हो गया था।

क्योंकि वह उसके बाद सरदार बनने जा रहा था, इसलिए शिवाल ने बचपन से ही योग्य गुरुओं से, तलवार चलाने, जंगलों में, नदियों में शिकार करके भोजन प्राप्त करने की विद्याओं का अभ्यास उसे करवाया था। इन सब में शिखिमुख, अपनी पन्द्रहवीं वर्ष की उम्र में ही प्रवीण हो गया था। कुम्भार टीले में ही नहीं, आसपास के गाँवों में भी उससे बढ़कर, शिकारी, बहादुर और सूझ-बूझ वाला कोई न था।

जब लड़के की पांच दस लोग प्रशंसा करते तो शिवाल फूला न समाता। पर खुशी के साथ लड़के के बारे में उसे कुछ चिंता भी थी। वह चाहता था कि उसका लड़का भी पढ़े लिखे, पर शिखिमुख की यह शिक्षा, अक्षर ज्ञान के साथ ही समाप्त हो गई थी।

कुम्भार टीले के सौ डेढ़ सौ मील के प्रान्त में सिवाय शिवाल के शबरों में कोई

पढ़ने लिखनेवाला न था। शबर लोग जंगली थे। वे वन पर्वतों में ही रहा करते थे। शिकार और पशुओं पर ही वे अपना जीवन निर्वाह करते थे, वे नगर के जीवन से परिचित न थे...उनका नगरों से कोई सम्बन्ध भी न था। अगर इन हालतों में, यदि वे पढ़ने लिखने की ओर ध्यान न देते थे, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। पर शिवाल जब नवयुवक था, तभी उसने एक क्षत्रिय के साथ देश विदेश में घूम घामकर शिकार करना और पढ़ना लिखना सीख लिया था। उनके कारण जीवन में उसे कई लाभ दिखाई दिये। शिखिमुख ने इस बारे में अपने पिता को बड़ा निराश किया।

रोज, सूर्य के उदय होते ही, धनुष बाण और भाला लेकर, शिकार के लिए जाते समय शिखिमुख अपने पिता से कहता जाता। वह सूर्यास्त के बाद ही गाँव वापिस आता।

एक दिन सवेरे शिखिमुख पिता से कहकर शिकार के लिए निकल पड़ा। उसके साथ उसका कुत्ता था। छुटपन से ही उसने उसको पाला था। वह साहस में शेर-सा था और चालाकी में लोमड़ी-सा। जंगलों मे वे एक दूसरे की मदद करते घूमा फिरा करते। कुत्ता, सूँघकर रास्ता दिखाया करता। शिखिमुख उसके पीछे जाता और जंगली जानवरों का शिकार किया करता।

शिखिमुख और उसका कुत्ता जंगल में बहुत दूर चले गये। न मालूम क्यों, हालाँकि दुपहर हो गई थी, उन्हें उस दिन न कोई हरिण मिला, न सूअर ही, न और कोई जानवर ही। जंगल भी

जाने क्यों सूना सूना था। बन्दर रह रहकर पेड़ों पर बैठे बैठे किच किच करते और टहनियों के पीछे जा छुपते। कभी शेर के इस तरफ भागने की ध्वनि सुनाई देती, तो कभी उस तरफ।

"यह खामोशी क्या है? क्या जंगल को कोई बीमारी हो गई है? ये जानवर कहाँ छुप गये हैं? शेर आदि भी क्यों यूँ दौड़ रहे हैं?" कहकर शिखिमुख ने अपने कुत्ते की ओर देखा। कुत्ता, जमीन को सूँघता कुछ दूर गया। जब मालिक पीछे नहीं गया, तो वह धीमे धीमे भौंकने लगा।

शिखिमुख ने कुत्ते की ओर घूरकर पूछा—"क्यों, धूप में क्या तुझे पागलपन चढ़ गया है? तुम्हारा भौंकना सुनकर आस पास के जानवर भाग नहीं जायेंगे?"

कुत्ता थोड़ी देर चुप रहा। फिर जमीन सूँघकर आगे भागा और जब तब भी उसका मालिक न हिला तो वह पीछे लौट आया और उसके चारों ओर मँड़राने लगा। कुत्ते को देखकर उसे आश्चर्य हुआ—वहाँ पड़े एक ठूँट पर खड़े होकर उसने उस ओर देखा, जिस ओर उसका

कुत्ता भागा भागा गया था। उसे न कोई जन्तु दिखाई दिया न मनुष्य ही, परन्तु कुत्ता तब भी धीमे धीमे भौंक रहा था।

शिखिमुख अपने कुत्ते को अच्छी तरह जानता था। उसे सहलाकर वह एक पेड़ पर चढ़ा और कुत्ता जिस ओर जाना चाहता था, उस ओर ध्यान से देखा। उसकी दृष्टि एक विचित्र शिकारी पर पड़ी। घोड़ा और घुड़सवार दोनों ने कवच पहिन रखे थे। घुड़सवार की कमर से एक लम्बी तलवार लटक रही थी, दायें हाथ में एक बड़ा भाला था। उसके

सिरे पर एक पीले लाल रंग की झंडी फड़ फड़ा रही थी।

"यह कौन है? पिता पुराण की कहानियों में अतिरथ और महारथ बताया करते थे, शायद उनमें से कोई है। पर साथ रथ क्यों नहीं है? वाह, क्या पोषाक पहिन रखी है।" सोचता सोचता शिखिमुख हँसने लगा। कवचों को पहिने योद्धाओं को उसने इससे पहिले कभी न देखा था। एक दो बार उसने राजा के सैनिकों को देखा तो था, पर उनको इस तरह कवच पहिने नहीं पाया था।

शिखिमुख उसकी ओर यूँ चकित होकर देख ही रहा था कि उसको एक और आश्चर्यजनक और भयानक दृश्य दिखाई दिया। आठ दस आदमी जो वेष भूषा से डाकू लगते थे, घुड़सवार के रास्ते पर आगे पीछे टहनियों पर से एक साथ कूदे। घोड़ा बिदक उठा। घुड़सवार ने उसको रोका। फिर वह जोर से चिल्लाते हुए, तलवार निकालकर उनसे झूझ उठा।

शिखिमुख को उस घुड़सवार को आफत में फँसा देख उस पर बड़ी दया आयी। एक पर दस का एक साथ आक्रमण करना अधर्म है, अक्षम्य है। शत्रु की संख्या को देखकर भी वह घुड़सवार न डरा। इसलिए शिखिमुख ने उसको आदर से देखा। उसने अपने कुत्ते को सावधान किया और पेड़ों की टहनियाँ पकड़कर कूदता, फाँदता क्षण में वहाँ पहुँच गया।

इस बीच घुड़सवार डाकुओं को तलवार से मारता जाता था। "विक्रमकेसरी तलवार बलि चाहती है। नीचो, भागो नहीं, मैं अपना प्रताप दिखाऊँगा।" वह जोर जोर से कह रहा था। इतने में,

एक चोर ने छुपकर, घोड़े के पाँव पर तलवार से निशाना मारा। घोड़ा घायल होकर एक तरफ मुड़ गया, घुड़सवार उस झटके के कारण नीचे गिर गया और फिर खड़े होकर, एक हाथ में भाला और दूसरे में तलवार लेकर डाकुओं का मुकाबला करने लगा।
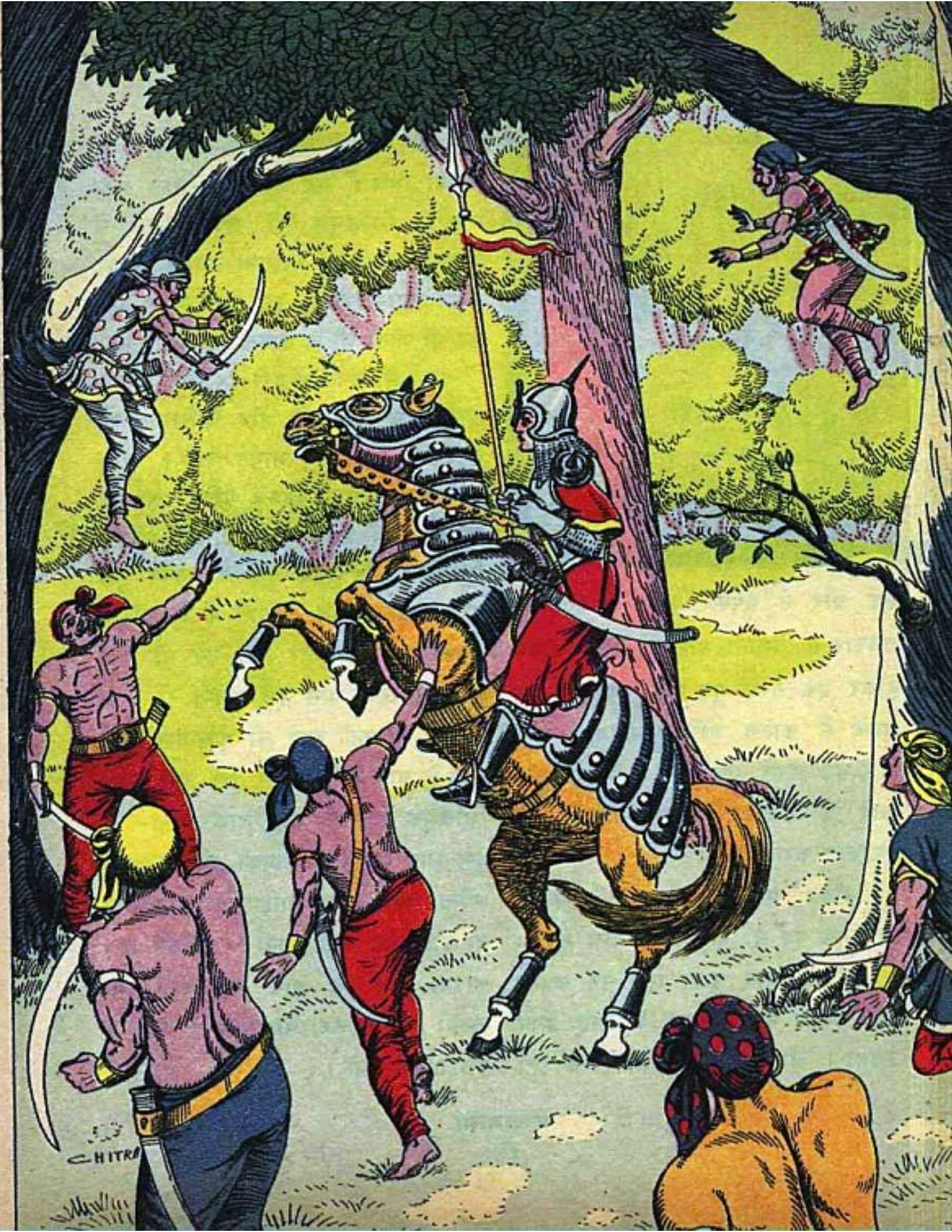
"शबर माता की जय!" कहता शिखिमुख पेड़ से, डाकुओं के बीच कूदा। इस बीच उसका कुत्ता एक पर लपका और उसका गला पकड़ने के लिए ऊपर उछला। आश्विक इसी पशोपेश में रहा कि जो आदमी आया है, वह शत्रु है, अथवा मित्र। वह एक क्षण स्तब्ध खड़ा रहा। शिखिमुख को अपना भाले से डाकुओं की ओर निशाना लगाता देखकर उसने कहा-"दोस्त, इन दुष्टों में से एक को भी जीता जी न भागने देना।"

इतने में, जंगल में दूरी पर सीटी बजी। तुरत डाकू, घुड़सवार और शिखिमुख को छोड़कर वहाँ से भागने लगे। चूँकि घुड़सवार ने भारी कवच पहिन रखा था, इसलिए वह उनके पीछे न दौड़ सका। शिखिमुख और उसके कुत्ते ने उनको कुछ दूर खदेड़ा। जब वे पेड़ों के झुरमुट में, उनकी पहुँच से बाहर चले गये तो फिर वे घुड़सवार के पास चले आये।

जब वे वहाँ आये तो घुड़सवार अपने घोड़े के घाव को ध्यान से देख रहा था। शिखिमुख ने उसके पास जाकर कहा-"ये दुष्ट भाग गये हैं। आपको इस जंगल में अकेला नहीं आना चाहिए था। आपको तो कोई चोट नहीं आयी? गनीमत है। आइये, घोड़े के घाव पर कोई दवा लगायें।" कहकर, वह पास के पेड़ों से पत्ते तोड़ने लगा।

आश्विक बिना कुछ कहे शिखिमुख को चोटी से ऐड़ी तक देखने लगा। वह जान सकता था कि वह शबर जंगली जाति का था। उसने उसकी आपत्ति में सहायता भी की थी। "शबर माता की जय" कहता, वह डाकुओं के बीच कूदा था। क्या यह सचमुच शबर है? इसमें कोई धोखा तो नहीं है...? घुड़सवार यूँ सोच रहा था।

शिखिमुख ने घोड़े के पास जाकर, उसको पत्तों का रस लगाते हुए घुड़सवार से पूछा–"आपका नाम क्या है? जंगल में अकेले क्यों घूम रहे हैं?"

घुड़सवार जवाब देने के लिए कुछ देर हिचका, "हम दोनों समान आयु के हैं। अट्ठारह बीस वर्ष के हैं? क्यों? क्यों फिर तुम आप आप कर रहे हो? खैर, तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने से पहिले मुझे तुमसे एक प्रश्न पूछना है।"

"क्या है वह प्रश्न?" शिखिमुख ने घुड़सवार की बात पर आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा।

"तुम शबर जाति के हो न?" घुड़सवार ने पूछा।

"हाँ, मेरा नाम शिखिमुख है। आप... नहीं, नहीं तुम्हारा नाम क्या है?" शिखिमुख ने पूछा।

"शिखिमुख!" घुड़सवार ने आँखें बड़ी करके सिर हिलाते हुए पूछा–"वह तुम्हारे बाबा का नाम है न? क्यों? मेरा नाम विक्रम केसरी है। यह मेरे बाबा का नाम है। तुम्हारे पिता का नाम शिवाल है, उसने विक्रमकेसरी के बारे में पहिले ही बता रखा होगा। वे कुशल तो हैं?" विक्रम केसरी ने पूछा।

विक्रमकेसरी की बातें सुनकर शिखिमुख को, ऐसा लग रहा था, जैसे कोई सपना देख रहा हो, उसने कभी न सोचा था कि वह अपने जीवन में कभी उसे देखेगा।

"मेरे पिता सकुशल हैं। मैंने तुम्हारे बाबा के बारे में बहुत सुना है। तुम शूरसेन देश के हो न? लगता है, तुम हमारे गाँव की ओर ही जा रहे थे न? पर इस सब पर मुझे विश्वास नहीं हो पा रहा है।" शिखिमुख ने कहा।

"अभी और कई ऐसी बातें हैं, जिन पर तुम्हें विश्वास न होगा और जिन्हें मैं घर पहुँचकर तुम्हें बताऊँगा। इससे कुछ देर पहिले जिन्होने मुझे घेर लिया था...वे केवल डाकू नहीं है। वे इस जीन से लटकती हुई थैली ही नहीं चाहते थे, बल्कि मेरी जान भी लेना चाहते थे, इसलिए हमारा जल्द से जल्द तुम्हारे गाँव पहुँच जाना अच्छा है।" विक्रमकेसरी ने कहा।

तब शिखिमुख जान गया कि जहाँ वह था, वह कितना भयंकर प्रदेश था। डाकू पेड़ों के पीछे छुप छुपकर फिर उन पर हमला करने की ताक में थे।

घायल घोड़े को चलाते चलाते शिखिमुख और विक्रमकेसरी कुम्भार टीले की ओर चल पड़े। रास्ते में, शिखिमुख ने एक जंगली सूअर को मारकर कन्धे पर डाल लिया। डाकुओं से फिर उनकी मुठभेड़ नहीं हुई। परन्तु अन्धेरे होने के कुछ देर बाद, जब वे गाँव के पास पहुँचे तो शिवाल और उसके साथ कुछ आदमी मशालें लिये जंगल की ओर आ रहे थे। कई गाँववाले पहिले शिखिमुख को देखकर उसकी ओर जोर से चिल्लाते भागे भागे गये। (अभी है)

व्यर्थ वर

विक्रमार्क ने हठ न छोड़ा। वह पेड़ के पास गया। पेड़ पर से शव उतार कर, कन्धे पर डाल, हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा— "तुम्हारी लगन देखकर खुशी होती है, पर कहीं ऐसा न हो कि हेमन्तराम की लड़की, मालिनी के वर की तरह, तुम्हारा वर कहीं व्यर्थ न जाय। ताकि तुम्हें थकान न मालूम हो, मैं हेमन्तराम की लड़कियों की कहानी सुनाता हूँ। सुनो।" उसने यूँ कहानी सुनानी शुरु की।

जयन्त नगर में, हेमन्तराम नाम का एक सामन्त रहा करता था। उसकी दो लड़कियाँ थीं। बड़ी का नाम मालिनी था और छोटी का नलिनी। मालिनी बड़ी

अक्लमन्द थी, शान्त स्वभाव की थी, पर अधिक सुन्दर न थी। नलिनी बड़ी सुन्दर थी, पर उसका स्वभाव चिड़चिड़ा था। घमंड़ी भी थी—खास कर उसे अपनी खूबसूरती पर बड़ा अभिमान था।

मालिनी और नलिनी, दोनों बड़ी होकर, विवाह के योग्य हो गईं। परन्तु उनके लिए उपयुक्त वर ढूँढ़ निकालना हेमन्तराम के लिए एक बड़ी समस्या बन गई। आने को तो बहुत सम्बन्ध आये—पर हर कोई नलिनी से ही शादी करना चाहता, मालिनी से विवाह करने के लिए कोई तैयार न था। बड़ी लड़की शादी किये बगैर छोटी की कैसे की जाये? यह तो समस्या थी। इसके साथ एक और समस्या उलझ गई थी, वह यह कि अपने सौन्दर्य पर गर्व करनेवाली, नलिनी को कोई भी सम्बन्ध न जंचा। उस हालत में, अगर हेमन्तराम छोटी लड़की की शादी करने के लिए मान भी जाता, तो भी न कर सकता था।

इस बीच, हेमन्तराम के बाल मित्र का लड़का माधव वर्मा, देश विदेश देखता, जयन्ती नगर भी पहुँचा। उसके यहाँ अतिथि होकर रहा।

वह बड़ा सुन्दर था। नलिनी ने, जो किसी और युवक की ओर आकर्षित हुई थी उसको अपने सौन्दर्य से प्रभावित करने का प्रयत्न किया। पर माधव जान गया कि नलिनी घमंड़ी थी।

माधव जयन्ती नगर में कुछ दिन ठहरकर जाने ही वाला था कि हेमन्तराम ने उससे अपने मन की बात कही—"मैं और तुम्हारे पिता, लुटपन में बड़े पक्के दोस्त थे। इसलिए हमारे दोनों परिवारों में सम्बन्ध स्थापित होने से

अच्छी और कौन-सी बात हो सकती है ? तुमने मेरी दोनों लड़कियों को देखा है। अगर तुम उनमें से किसी एक से विवाह कर सको, तो मैं बड़ा प्रसन्न होऊँगा।"

माधव ने कहा—"आपकी इच्छा बड़ी अच्छी है, पर मैं कोई निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ। वह इसलिए कि मैं अपने होनेवाली पत्नी में सौन्दर्य और सौजन्य दोनों देखना चाहता हूँ। दुर्भाग्यवश ये दोनों गुण, आपकी लड़कियों में हैं। यानि मालिनी में सौजन्य है और नलिनी में सौन्दर्य। मैं एक साल के अन्दर, अपनी यात्रा पूरी करके, अपने देश वापिस जाने से पहिले यहीं से गुजरूँगा। इस बीच यदि मैंने कोई निश्चय किया, तब आपकी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा। इस बार मुझे क्षमा कीजिये।"

माधव के चले जाने के बाद, हेमन्तराम ने अपनी लड़कियों से, बिना कुछ छुपाये उसकी बात बतायी। माधव की बात सुनकर, मालिनी और नलिनी में अलग अलग प्रतिक्रियायें हुईं। सच कहा जाये, तो वे दोनों माधव से विवाह करना चाहती थीं।

माधव की बात पर मालिनी हताश नहीं हुई। वह जानती थी कि वह सुन्दर न थी। पर नलिनी हताश थी, यह वह न समझ सकी कि कैसे और उसका स्वभाव जान जाते थे। फिर वह अपना स्वभाव बदल भी न सकती थी। उसका विश्वास था कि वह अपने सौन्दर्य से किसी को भी जीत सकती थी। जब उसे मालूम हुआ कि माधव, उसके सौन्दर्य से यदि आकर्षित न हुआ था, तो उसका कारण उसका अभिमान ही था, तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसके गर्व को चोट
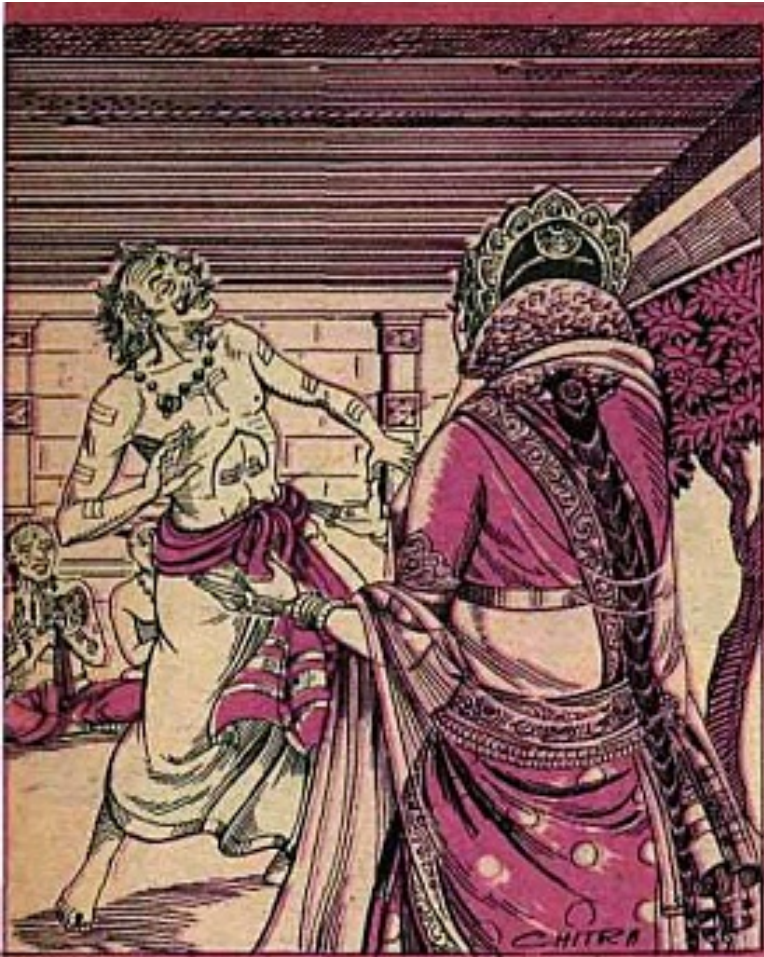
पहुँची। उसका अभिमान धीमे धीमे जाता रहा।

मालिनी ने यह भी तय कर लिया था कि उसे क्या करना चाहिए था। अगर माधव वापिस आने से पहिले वह सुन्दर बन गई, तो वह अवश्य उसके साथ विवाह करेगा। इसलिए उसने सौन्दर्य पाने की ठानी।

मालिनी एक मन्त्रोपासक के पास गई और उसके सामने उसने अपनी इच्छा व्यक्त की। यदि छः महीने तक श्वेताम्गी यक्षणी की अर्चना की गई और बलियाँ दी गईं, यक्षिणी प्रत्यक्ष होकर, मालिनी की इच्छा पूरी कर सकेगी। परन्तु अर्चना में किसी प्रकार की कमी कसर न हो, उपासक ने यह सलाह दी। मालिनी ने कहा कि चाहे अर्चना कितनी भी कठिन हो, वह उसे करके ही ठहरेगी।

छः महीने तक सब ठीक चलता रहा। यक्षिणी ने उपासक में व्यक्त होकर कहा—"मैं तुम्हारी निष्ठा पर सन्तुष्ट हूँ। तुम्हें मुझसे क्या सहायता चाहिये?"

"मुझे मेरी बहिन से अधिक सुन्दर बना दो। मैं और कुछ नहीं चाहती!" मालिनी ने कहा।

"तथास्तु...." कहकर, यक्षिणी उपासक से चली गई।

इसके बाद मालिनी में धीमे धीमे परिवर्तन होने लगा। वह शनैः शनैः अधिक सुन्दर होती जाती थी। रंग भी निखर रहा था। आँखें भी बड़ी हो रही थीं। हेमन्तराम ने अपनी लड़कियों को देखकर सोचा—"मालिनी, नलिनी से, सौन्दर्य में किसी तरह भी कम नहीं दिखाई देती! क्या आश्चर्य की बात है?"

पर और लोग कहा करते "मालिनी ही नलिनी से अधिक सुन्दर मालूम होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

"बहिन बड़ी भाग्यशाली है। इस बार अगर माधव उसे देखेगा, तो अवश्य ही उससे विवाह करेगा।" नलिनी ने सोचा।

माधव वापिस यात्रा में जयन्त नगर आया और हेमन्तराम का अतिथि होकर रहा। उसने मालिनी और नलिनी से पहिले की तरह बातचीत भी की। दो रोज बाद उसने हेमन्तराम से कहा— "आपने, आपकी लड़कियों में से किसी एक से शादी करने के लिए कहा था और मैंने यह भी कहा था कि अगर मैं कोई निश्चय कर सका, तो आपको बताऊँगा। मैंने निश्चय कर लिया है। मैं आपकी छोटी लड़की नलिनी से विवाह करने के लिए तैयार हूँ।"

हेमन्तराम बड़ा खुश हुआ। बड़ी लड़की माधवी से अब शादी करने के लिए बहुत से लोग तैयार थे। माधव ने जब उसको नहीं चुना, तो मालिनी को बड़ा गुस्सा आया। उसने शपथ की कि माधव से भी अच्छी स्थितिवाले से विवाह करेगी
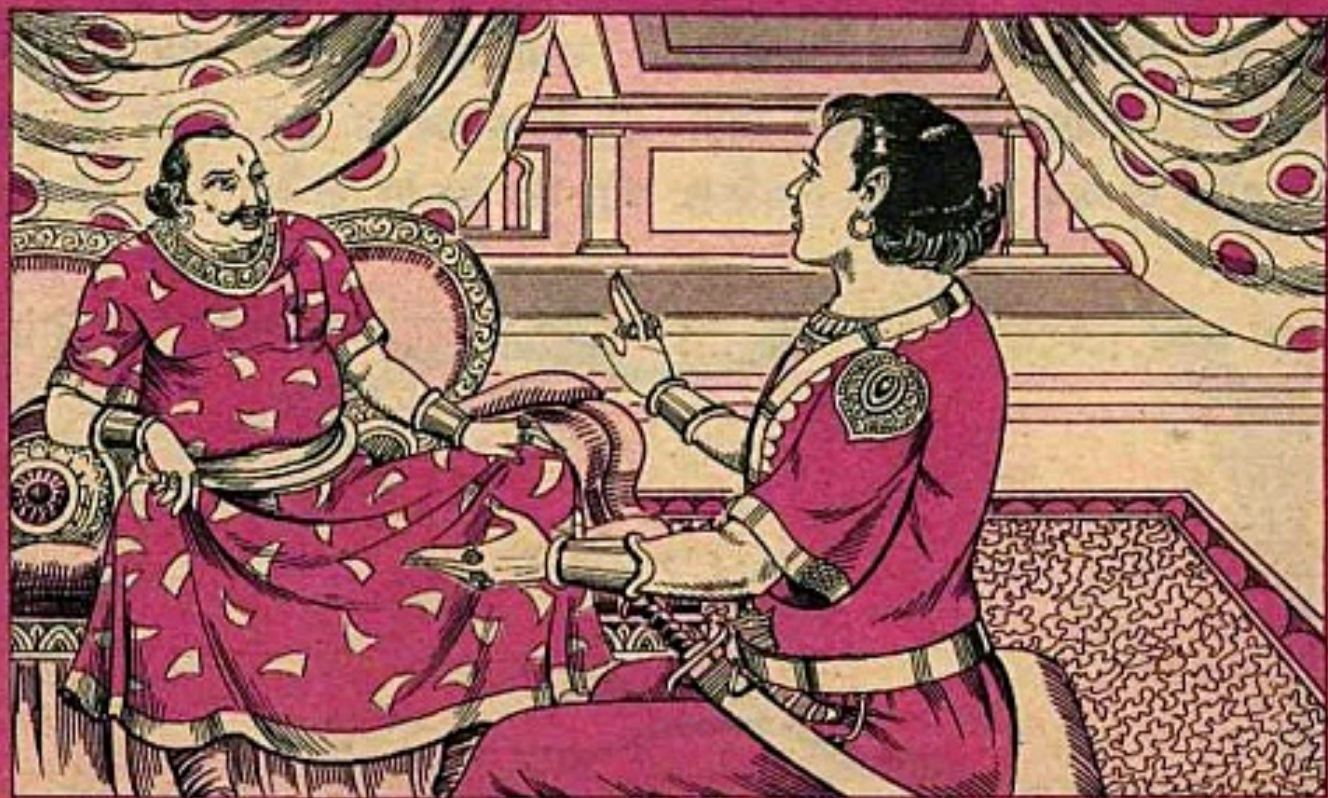
और उसने वैसे किया भी। हेमन्तराम ने अपनी दोनों लड़कियों का विवाह एक साथ किया और उन्हें उनकी ससुराल भी भेज दिया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा—"राजा, माधव ने मालिनी के साथ क्यों नहीं विवाह किया? वह नलिनी से भी अधिक सुन्दर हो गई थी न? उसकी पहिले की कमी यक्षिणी के वर से पूरी हो गई थी न? यदि तुमने इन प्रश्नों का जान बूझकर उत्तर न दिया, तो तुम्हारे सिर के टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे।"

तब विक्रमार्क ने कहा—"मालिनी ने सौन्दर्य पाने के लिए अपना सौजन्य खो दिया था। यक्षिणी से वर प्राप्त करने के लिए उसने जो प्रयत्न किया, उसमें स्वार्थ और बहिन के प्रति असूया थी। नलिनी ने भी अपनी कमी दूर कर ली थी। उसने अपने गर्व को छोड़ दिया था। इसका कारण उसका माधव के प्रति अत्यधिक प्रेम ही था। जब माधव दूसरी बार आया था और जब उसने उन दोनों से बातचीत की, तो वह जान गया होगा कि उनमें से सचमुच उसे कौन चाहती थी। वह समझ गया कि वह सौजन्य और सौन्दर्य, जो वह चाहता था, वे नलिनी में ही थे। वह नलिनी के सौन्दर्य से पहिले ही सन्तुष्ट था। इसलिए उससे अधिक सुन्दर मालिनी की ओर वह आकर्षित नहीं हुआ। यदि माधव केवल सौन्दर्य ही चाहता होता, तो पहिले ही नलिनी से शादी कर लेता।"

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही, बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और फिर पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

लक्ष्मी की कृपा

मथुरा नगर में राघव नाम का ब्राह्मण युवक रहा करता था। उसका कोई ऐसा न था, जिसे वह 'अपना' कह सके। बड़ा गरीब था। तो भी वह किसी के सामने हाथ न पसारता। वह नगर के सब वैष्णव मन्दिरों के चक्कर काटता। वहाँ के देवताओं की भक्तिपूर्वक प्रार्थना करता और वहाँ जो कुछ प्रसाद मिलता उससे अपना पेट भरता। देखने में वह हट्टाकट्टा और रौबदार भी लगता था।

एक बार राघव को स्वप्न में लक्ष्मी दिखाई दी। "मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अब मैं तेरे साथ रहकर तुम्हें सब ऐश्वर्य दूँगा।"

राघव ने लक्ष्मी देवी को नमस्कार करके कहा—"मुझे इस बात का सन्तोष है कि आपको मुझ पर दया आयी है। इतने दिन आपकी कृपा न थी, इसलिए मैं निश्चिन्त रह सका। न किसी को मेरी फिक्र थी, न मुझे किसी की, जो कुछ पुजारी देता है, उसे खाकर पेट भर लेता हूँ, तुम्हें शत शत नमस्कार। मैं तुम्हें नहीं चाहता।"

लक्ष्मी ने क्रुद्ध होकर कहा—"पगले कहीं के? मैं तुम्हें पकड़कर रहूँगी।"

"एक प्रार्थना, तुम मुझे कब छोड़कर जाओगी जरा यह बता देना। बस।" राघव ने कहा।

"जाते समय कहती जाऊँगी।" कहकर लक्ष्मी देवी अदृश्य हो गई।

अगले दिन कोई करोड़पति मन्दिर में पूजा करने जोर शोर से आया। उसने

सन्तोषकुमार

का बन्दी-सा ही था। जब वह उसके यहाँ से छूटा, तो लक्ष्मी देवी की पकड़ से भी छूटने के लिए वह सीधे राजा के यहाँ गया। नये रेशमी कपड़े पहिने, माथे पर टीका, गले में फूल मालायें, हट्टा कट्टा शरीर यह सब देखकर पहरेदारों ने सोचा कि बैकुण्ठ से विष्णु राघव के रूप में वहाँ आ गये थे।

राघव को किसी ने रोका टोका नहीं, वह सीधे राजमहल में चला गया। कई कमरों के बाद, राजा का शयनकक्ष आया। एक पलंग पर रानी और उससे कुछ दूर हटकर राजा पलंग पर सो रहा था। राघव ने रानी को, हाथ पकड़कर, पलंग से खींचा। रानी चिल्लायी और उसका चिल्लाना सुनकर राजा उठा। राजा ने देखा कि उसकी पत्नी को कोई जमीन पर खींच रहा था। राजा ने गुस्से में अपने तकिये के नीचे से तलवार निकाली।

इतने में रानी के पलंग पर एक साँप गिरा। राजा की तलवार उसको मारने के काम में आयी।

"हमारे प्राणों की रक्षा करने के लिए इस आधी रात में, लगता है विष्णु ने

राघव को देखा। न मालूम उसने राघव में क्या देखा कि उसे देखते ही उसने उसे रेशमी कपड़ों की जोड़ी दी और उस करोड़पति के साथ आनेवालों ने राघव के गले में फूल मालायें डालीं। पूजा के बाद सन्तर्पण हुआ। राघव को पेट भर भोजन खिलाया गया। वह, जो सिवाय प्रसाद के कुछ नहीं खा पाता था, यह भोजन पाकर सोचने लगा कि सचमुच लक्ष्मी ने जैसा कहा था, वैसा ही वह कर रही है।

रात को करोड़पति के यहाँ भोजन आदि हुए। तब तक राघव मानों करोड़पति

अवतार लिया है। आप कौन हैं?" राजा ने विनयपूर्वक राघव से पूछा।

"मेरा नाम राघव है।" राघव ने कहा।

राजा को राघव पर विश्वास हो गया। राजनगर में ही, उसे एक महल दिया और राजा ने उससे प्रार्थना की कि वह उसमें रहकर उसे धन्य करे। राघव जान गया कि लक्ष्मी को हराने के लिए उसके पास काफ़ी शक्ति न थी और वह इसके लिए मान गया।

राघव की स्थिति बढ़ी। राजा के आदर के साथ उसे राजा के परिवार वालों का भी आदर मिला। रोज उसे अनगिनत उपहार मिला करते। एक ने उसका एक सुन्दर लड़की के साथ विवाह भी कर दिया। राघव के चार बच्चे भी हुए। बच्चों को भी बहुत से उपहार मिले।

लक्ष्मी के रहने के लिए राघव ने एक बड़ी लोहे की तिजोरी की व्यवस्था की। लक्ष्मी उसमें पड़ी सड़ा करती। इस तरह बारह वर्ष बीत गये।

एक दिन गुरुवार की शाम को राघव की पत्नी जब ऊपर से सीढ़ियों से उतर रही

थी, तो चिल्लाई—"न दीप है, न धूप है, सब कहाँ जा मरे?"

लक्ष्मी देवी ने कहा था कि जाते समय वह यह ही कहेगी। यही निशानी थी।

राघव ने, अपने मन में लक्ष्मी देवी को नमस्कार किया। "तो....जाओ....माँ, जाओ।" फिर उसने अपनी पत्नी से कहा—"मुझ से कुछ न पूछना-माँगना, जो कुछ तिजोरी में है, उसे लेकर तुम और बच्चे अपने माईके चली जाओ।"

राजा जब शिकार पर जाता, तो साथ राघव को भी ले जाता। बच्चों और पत्नी के चले जाने के अगले दिन बाद, राजा शिकार पर जाते जाते राघव को भी साथ ले गया। उस दिन शिकार अच्छी तरह न चला। दुपहर तक राजा और शिकारी बुरी तरह थक थका गये। धूप में राजा, राघव की गोद में सिर रखकर, एक पेड़ की छाया में सो गया। शिकारी दूर दूर पेड़ों के नीचे चले गये।

यकायक पेड़ पर से, एक कौव्वे की बीट राजा के गले पर पड़ी। राजा गाढ़ी नीन्द में था। इसलिए वह उठा नहीं। राघव बहुत देर तक सोचता रहा कि कैसे राजा का सिर बिना हिलाये उस बीट को हटाया जाये। इतने में उसको राजा की कमर में छुरी दिखाई दी। उस छुरी को लेकर, उसने उससे बीट हटाने की सोची। इतने में राजा की आँखें खुलीं, गले पर छुरी को आता देख वह जोर से चिल्लाया—"धोखेबाज, धोखेबाज" वह उठा।

सैनिक भागे भागे आये।

"यह दगेबाज मेरी बगल में छुरी की तरह है, मेरा ही खाकर, मुझे मारने की सोच रहा था, इसे पकड़ लो।" राजा ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी।

राघव को बांधकर राजनगर ले जाया गया।

अगले दिन सुनवाई थी। राजा ने भरे दरबार में उस पर राजद्रोह का अपराध आरोपित किया--"कहो, क्या कहना चाहते हो?"

"मुझे कुछ नहीं कहना है। जो आप उचित समझें वह दण्ड दीजिये।" राघव ने कहा।

"मैं तुम्हें फांसी देता हूं। अगर तुम्हारी कोई अन्तिम इच्छा हो, तो कहो। हम पूरी करेंगे।" राजा ने कहा।

"मेरी तिजोरी में एक चन्दन का सन्दूक है, उसमें मेरी सम्पत्ति है। उसे मुझे एक बार देख लेने दीजिये। बाद में आप मौत की सजा देना।" राघव ने कहा।

राजकर्मचारियों ने जाकर जब राघव के घर में तिजोरी खोली, तो वह खाली थी। उन्होंने उसमें रखा चन्दन का सन्दूक लाकर, राजभवन में खोला। उसमें एक पुरानी धोती और एक लोटा था।

"तो यह है तुम्हारी सम्पत्ति!" राजा ने आश्चर्य से पूछा।

"हां, महाराज! जब तक मैं उनके भरोसे रहा, मुझे कोई कष्ट नहीं था। इतने में मुझ पर लक्ष्मी की कृपा हुई। मैं जानता था कि वह कृपा शाश्वत न होगी, इसलिए ही मैंने इनको रख छोड़ा था, अगर आप उन्हें मुझे दे देंगे, तो मैं अपने रास्ते चला जाऊँगा।" राघव ने कहा।

राजा चकित हुआ और उसने उसे जाने दिया।

आश्चर्य

किसी समय अवन्तिपुर पर बालादित्य नाम का राजा राज्य किया करता था। उसकी पत्नी का नाम वसुधा था। उनके बहुत दिनों तक बच्चे नहीं हुए। ज्योतिषियों ने कहा कि दुबारा शादी करने से अवश्य उसके बच्चे होंगे। राजा ने उनकी सलाह पर इन्दुमति से शादी की। वह बहुत अच्छी थी। अच्छे स्वभाव की थी। वह अपने पति और पत्नी के साथ बड़ी भक्तिपूर्वक रहा करती। पर राजा की बड़ी पत्नी को इन्दुमति से बड़ी ईर्ष्या थी। चूँकि ज्योतिषियों ने बताया था कि उससे राजा को सन्तान प्राप्ति होगी और यथा समय वह राजमाता बन जायेगी और उसका नाम भी कहीं न रहेगा।

बालादित्य महाराजा भी इन्दुमति को अच्छा जान, उसके साथ बड़े प्रेम से रहा करता। इस कारण वसुधा की ईर्ष्या और भी दुगनी हो गई थी।

कुछ समय बाद इन्दुमति के गर्भ हुआ। प्रसव के समय से पहिले ही, जैसे भी हो, उसे नष्ट करने का वसुधा ने निश्चय किया। इन्दुमति ने उसे धीरज बँधाया "कोई फिक्र न करो, यह मेरा जिम्मे रहा कि तुम्हारा आराम से प्रसव हो।"

एक दिन शाम को इन्दुमति को प्रसव वेदना होने लगी। बड़ी रानी ने दायी को बुलाकर कहा—"छोटी रानी के जो बच्चा हो उसे छुपा देना और बताना कि उसके मेंढ़क पैदा हुए थे। टोकरे भर मेंढ़क पकड़ ला।" उसने बड़ी घूँस देकर,

श्यामसुन्दर

दायी को भेजा। उसने टोकरे भर मेंढ़क लाकर प्रसव के कमरे के पास रख दिये।

बड़ी रानी ने प्रसव के कमरे में एक सीढ़ी रखवाई, छोटी रानी से कहा---"तुम आँखें बन्द करके सीढ़ी पर छः बार चढ़ना, उतरना तब आराम से प्रसव होगा।" इन्दुमति ने यह सोचकर कि वह ठीक ही कह रही थी, आँखों पर पट्टी बाँधकर सीढ़ी पर चढ़ने उतरने लगी।

जब वह तीसरी बार चढ़ रही थी, तो उसे जोर से दर्द हुआ। फिर उसके जुड़वे बच्चे हुए। एक लड़का और दूसरी लड़की। इन्दुमति को इतनी होश न थी कि जान सके कि क्या हो रहा था।

दोनों बच्चों को बड़ी रानी अलग ले गई। जैसे उसने पहिले ही हिदायत कर दी थी, दायी ने टोकरे के मेंढ़कों को पलंग पर बिछा दिया। फिर उसने इन्दुमति से कहा---"महारानी गर्भ हो गया, आपने मेंढ़कों को जन्म दिया है।" फिर उसने दुख का अभिनय किया।

बच्चों को उठाकर बड़ी रानी बाहर गई और उसने मालती नाम की बूढ़ी दासी को बुलाया। "इन बच्चों को ले जाकर, नदी के किनारे गाड़ आ। अच्छा ईनाम दूँगी। अगर तुमने यह भेद किसी को बताया, तो तुम्हारी खाल उखड़वा दूँगी" मालती उन बच्चों को लेकर सवेरे के समय नदी किनारे पहुँची। जिन्दे बच्चों को गाड़ देने के लिए उसका मन नहीं माना। उन बच्चों को नदी किनारे छोड़कर, वह वापिस चली गई। मालती ने सोचा कि उसका आना जाना किसी ने नहीं देखा था, पर उसे कुम्हारिन ने देख लिया था। वह वहाँ चिकनी मिट्टी के लिए गई हुई थी। उसने मालती को पहिचान लिया। उसने

यह भी देखा कि मालती, वहाँ कुछ लाकर छोड़कर चली गई थी।

कुम्हारिन ने जब पास आकर देखा तो वे बच्चे थे और तभी पैदा हुए थे। कुम्हारिन यह भी जानती थी कि छोटी रानी के बच्चे पैदा होनेवाले थे। छोटी रानी के बच्चे, मालती क्यों कर, नदी के किनारे छोड़ गई है?

यह भेद बाद में खुलेगा। कुम्हारिन ने सोचा कि राजा के बच्चों की रक्षा करने के कारण उसको बड़ी कीर्ति मिलेगी। वह इसलिए उन बच्चों को अपने घर ले गई।

तुरत यह अफवाह फैल गई कि छोटी रानी ने मेंढ़कों को जन्म दिया था। यह सुन सब से अधिक दुख इन्दुमति को हुआ। पर वह यह न जान पाई कि ऐसा क्यों हुआ था। राजा इतना शर्मिन्दा हुआ कि मेंढ़कों को जन्म देनेवाली रानी को, अन्तःपुर में उसने रखना न चाहा। उसके लिए उसने जंगल में घर बनवाया और उसे वहाँ भेज दिया।

नदी के समीप, कुम्हारिन के घर इन्दुमति के बच्चे, बड़े लाड़ प्यार से बड़े हो रहे थे। वे दोनों बड़े खूबसूरत थे। इस तरह के खूबसूरत बच्चों के पाने पर, आसपास के लोगों ने उसका अभिवादन किया।

महीने, वर्ष बीत गये। जब से वह इन्दुमति को जंगल में छोड़ आया था, तब से राजा को मानसिक आधि-सी हो गई थी। बच्चे तो हुए ही नहीं, उसकी जिन्दगी ही बिगड़-सी गई। राजा के शरीर, मन को दुर्बल होता देख, मन्त्री और पुरोहित आदि ने कहा—"आपके ग्रहों की गति ठीक नहीं है। आप ग्रह पूजा कीजिये। ब्राह्मणों को सोने के मेंढ़क दान दीजिये।

यदि पुजा के लिए सन्तर्पण किया गया, तो सब दोष चले जायेंगे।" उन्होंने सलाह दी। राजा भी यह करने के लिए मान गया।

जगह जगह ढिंढोरा पीटा गया कि फलाने दिन सन्तर्पण होनेवाला था, सब को आने के लिए कहा गया। कुम्हारिन से बच्चों ने पूछा—"राजा क्यों सन्तर्पण कर रहे हैं?"

"राजा के एक पत्नी थी। जब उसकी पत्नी के बच्चे न हुए, तो राजा ने दुबारा विवाह कर लिया। दूसरी पत्नी गर्भवती हुई। एक दिन रात को उसने दो बच्चों को जन्म दिया। पर किसी ने, जिसकी उससे बनती न थी, उन बच्चों को नदी किनारे फिंकवा दिया। यह अफवाह उड़ा दी कि रानी के मेंढ़क पैदा हुए थे। राजा पगला था, उसने उनकी बातों पर विश्वास कर लिया और छोटी रानी को जंगल में भेज दिया। अब वह अपना किया हुआ भुगत रहा है। उस पाप को धोने के लिए अब ब्राह्मणों को सोने के मेंढ़क दान में दे रहा है। सन्तर्पण कर रहा है।" पुजा का कुम्हारिन ने बच्चों को बताया।

"तो राजा के बच्चों का क्या हुआ?" उन्होंने पूछा।

"कहीं वे सुख से बड़े हो रहे हैं।" कुम्हारिन ने कहा।

"तो सन्तर्पण में हम भी चलें?" उन दोनों ने फिर पूछा। कुम्हारिन इसके लिए मान गई। परन्तु जब सन्तर्पण का दिन आया, तो कुम्हारिन ने कोई बहाना किया और गई नहीं। बच्चों को भेज दिया। उन्हें यह भी बताया कि भोजन के समय उनको क्या क्या करना था। दोनों बच्चे अपने गुड्डे गुड़िये लेकर, सन्तर्पण में गये।

भोजन के समय, उन्होंने अपने गुड़ों को भी अपने साथ बिठाया और परोसनेवालों से कहा कि उनके लिए भी पत्तल लगाई जायें। उनको भी उन्होंने परोसवाया। उन्होंने कहा कि यदि उनको नहीं परोसा गया, तो वे भी नहीं खायेंगे।

यह बात राजा तक पहुँची, वह स्वयं वहाँ आया। उनको देखकर उसका हृदय गद गद हो उठा। "अरे पगले बच्चो, कहीं गुड़ियायें भी भोजन करती हैं? क्यों यूँ जिद करते हो?"

तुरत बच्चों ने पूछा—"क्या कहीं किसी स्त्री के मेंढ़क पैदा होते हैं? राजा ने छोटी रानी को जंगल क्यों भेजा?"

राजा पर मानों बिजली गिर पड़ी। वह बच्चों को अलग ले गया। "तुम्हें किसने बताया है कि छोटी रानी के मेंढ़क पैदा हुए हैं।"

"हमें हमारी नानी ने बताया है। नानी सब जानती है।" बच्चों ने कहा।

राजा ने कुम्हारिन को बुलाकर पूछा। उसे जो कुछ मालूम था, उसने बता दिया और बाकी बातों के बारे में मालती से पूछने के लिए कहा। मालती ने डरकर सच कह दिया। राजा जान गया कि वे दोनों बच्चे उसी के थे। उसने वन से इन्दुमति को बुलवाया और अपनी बड़ी रानी को वहाँ रहने के लिए भेज दिया। उसने कुम्हारिन को बड़ा ईनाम दिया, क्योंकि उसने सिर्फ बच्चों को बचाया ही न था बल्कि, उनको पाल पोसकर बड़ा भी किया था। इसके बाद, उसकी सारी बीमारियाँ जाती रहीं और वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ सुख से रहने लगा।

निशानी

एक गाँव में शिवदास नाम का एक व्यापारी रहा करता था। जब वह और उसकी पत्नी अधेड़ हो गये, तो उनके एक लड़का हुआ। उन्होंने उसका नाम कुमारदास रखा।

कुमारदास, जो बड़े लाड़ प्यार से पला था, बड़ा हठी हो गया। पाँच बरस होते ही उसको अक्षराभ्यास कराया गया। पर उसने स्कूल न जाने का हठ किया। अगर वह पढ़ा लिखा न तो वह बिगड़ बिगड़ा जायेगा, यह सोचकर माँ बाप ने उसे समझाया बुझाया। पर कोई लाभ न हुआ। आखिर तंग आकर पिता ने उसे पीटा। माँ ने डाँटा फटकारा। उसी दिन कुमारदास बिना किसी को कहे कहीं चला गया। शिवदास ने अपने लड़के को खोजा। पर वह कहीं मिला नहीं।

कई वर्ष हो गये। शिवदास के फ़िर सन्तान न हुई। उसे विश्वास था कि उसका लड़का कभी न कभी वापिस आयेगा ही। वह बूढ़ा हो रहा था। जब वह बहुत कमजोर हो गया, तो राम नाम के नौकर को घर में रखा।

राम, शिवदास की हर तरह से मदद करता और उसके लड़के की तरह उसके साथ व्यवहार करता। वह विश्वासपात्र ही नहीं, बुद्धिमान और विवेकी भी था। इसलिए शिवदास ने रामदास को अपने कुटुम्ब का रहस्य बता दिया।

दो तीन पीढ़ियों से शिवदास के घर एक खजाना चला आ रहा था। इस बारे में बहुत से लोगों को उड़ती उड़ती खबरें मिली थीं। पर सिवाय शिवदास के वह

खजाना कहाँ था, कोई नहीं जानता था। उसके बारे में शिवदास से राम को पता लग गया।

शिवदास और उसकी पत्नी बूढ़े हो गये। राम ने उनको किसी बात की भी कमी न होने दी। शिवदास का यह विश्वास कि उसका लड़का फिर वापिस आयेगा, किंचित भी कम नहीं हुआ था, वह हर किसी से कहा भी करता था।

एक दिन किसी आदमी ने, जिसकी उम्र तीस से अधिक हो गई थी आकर राम से कहा—"मैं कुमारदास हूँ।"

"ओहो, यह बात है? बड़ी खुशी है। अपना घर देखना, मेरे साथ आओ।" कहकर राम उस आदमी को एक एक कमरे में ले गया। दो कमरों में कुछ न था। एक कमरे में एक खूँटी पर एक कुड़ता लटक रहा था। एक और कमरे में तीन बड़े बड़े बर्तन थे। एक में चावल भरा था। दूसरे में मिर्चे और तीसरे में भुस था।

इन कमरों को देखने के बाद राम ने उस आदमी से कहा—"तुम कुमारदास नहीं हो, जिस रास्ते आये हो उस रास्ते चले जाओ। नहीं तो, मैं तुम्हें ग्रामाधिकारी को सौंप दूँगा।"

वह आदमी घबराकर कुछ देर तक राम की ओर देखता रहा। फिर बिना कुछ कहे चला गया। वह आदमी खजाने के लिए ही आया था।

इसी प्रकार दो तीन और आदमी अपने को "कुमारदास" बताते हुए आये। उनमें कई ऐसे भी थे, जिनकी उम्र पच्चीस वर्ष से ऊपर थी। राम ने तुरत उनको भेज दिया। जो तीस वर्ष से ऊपर के लगते थे, उनको ही उसने कमरों में घुमाकर दिखाया।

कुछ दिन बीते। राम ने एक दिन घर के सामने एक आदमी और एक बच्चे को उठाये एक स्त्री को देखा। वह स्त्री इधर उधर देख रही थी। परन्तु आदमी घर को ध्यान से देख रहा था। उस आदमी की उम्र पैन्तीस से ऊपर थी।

राम के दीखते ही उसने उससे पूछा—"क्या इस घर में अब शिवदास भी नहीं रहते?"

"यह शिवदास जी का ही घर है। तुम क्या चाहते हो?" राम ने पूछा।

"क्या वे आराम से घूम फिर रहे हैं? हम उन्हें और उनकी पत्नी को देखने आये हैं।" उस आदमी ने पूछा।

"तुम कौन हो?" राम ने पूछा।

"तुम्हें क्या, चाहे मैं कोई भी हूँ। इधर उधर घूमता रहता हूँ।" उस आदमी ने कहा।

"मेरे साथ आओ, मैं शिवदास जी और उनकी पत्नी को दिखाऊँगा। उस स्त्री को और बच्चे को वरान्डे में बैठने के लिए कहो।" कहकर राम उस आदमी को घर के एक एक कमरे में ले गया।

खाली कमरों को देखकर वह आदमी कुछ गुनगुनाने लगा। खूँटी पर लटके हुए कुड़ते को देखकर उसने उसे लिया, इधर उधर घुमाकर देखा। फिर मन ही मन हँसने लगा और जब बर्तनोंवाले कमरे में गया, तो चावल का बर्तन देखकर कुछ देखता खड़ा रह गया।

"क्या सोच रहे हो?" राम ने पूछा।

"कुछ याद आ गया था, उसे तुम्हें बताने की जरूरत नहीं है।" उस आदमी ने कहा।

फिर राम उसको शिवदास और उसकी पत्नी के पास ले गया। "तुम्हारा लड़का वापिस आ गया है।" उसने कहा।

दोनों बूढ़े अलग अलग पलंग पर बैठे थे। नये आदमी ने उनकी ओर ध्यान से देखा। फिर "माँ" कहता शिवदास की पत्नी को गले मिला।

पर शिवदास का सन्देह बना रहा।

"हमें कैसे मालूम हो कि तुम कुमारदास हो, कितने ही आये और इसलिए आये कि घर में खजाना था, उन्होंने भी अपना नाम कुमारदास बताया। पर राम अभी तक ठगा नहीं गया।" शिवदास ने कहा।

"खजाने के लिए ही आना था, तो पिता जी मैं बहुत पहिले आ सकता था। चावल के बर्तन के नीचे एक और बर्तन है, क्या मैं यह नहीं जानता? मै आप दोनों को देखने के लिए अपनी स्त्री और बच्चे के साथ आया हूँ। मैंने सोचा था कि आप मुझे कभी के भूल चुके होंगे। परन्तु मेरे छुटपन का कुड़ता अभी तक खूँटे पर लटक रहा है। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि अभी तक मुझे नहीं भूले हैं।" कुमारदास ने कहा।

शिवदास का सन्देह जाता रहा। उसने राम को दिखाते हुए कुमारदास से कहा - "इतने सालों से यह तुम्हारी जगह रहा है, इसे तुम अपना भाई ही समझो, दोनों मिल जुलकर रहो।"

कुमारदास अपनी स्त्री और बच्चे के साथ अपने मां बाप के पास ही रहने लगा। बूढ़ों को लाड़ प्यार करने के लिए एक पोता भी मिल गया था।

गोहा-भेड़

गोहा अच्छा हट्टा कट्टा था। उसको उसकी पत्नी की बनाई हुई चीज़ें खाने के लिए काफी न होती थीं। इसलिए वह यह मालूम कर लेता कि कहाँ कहाँ कैसी दावतें हो रही हैं। वह वहाँ चला जाता और घर दस बारह दिन बाद पहुँचता।

जब एक दिन गोहा घर पहुँचा, तो उसकी पत्नी जोर से रोई, उसने कहा "तुम कभी कभी ही घर आ जाते हो, घर में मैं अकेली बैठी बैठी कैसे दिन काटूँगी? अगर तुम्हारे बदले कोई कुत्ता या बिल्ली हो, तो मेरा समय भी कट जायेगा।

गोहा ने एक भेड़ सस्ते में खरीदी और पत्नी को उसे देकर कहा --"इसको ज़रा पालो, पोसो, तुम्हारा वक्त कट जायेगा।"

वह भेड़ भी गोहा की तरह थी। गोहा के घर में जो कुछ पौधे थे, उसने खा लिए और वह दूसरों के घरों में जाने लगी।

जब गोहा फिर घर वापिस आया, तो उसकी पत्नी ने उससे कहा - "मेरे साथ रहने के लिए तुम अच्छी भेड़ लाये हो! इसके कारण अड़ोस, पड़ोस के लोग भी मुझसे बिगड़ गये हैं। यह सब के घर के पौधे चर कर रहा है। सब मिलकर हमारे घर को आग लगाने की सोच रहे हैं। इसे किसी कसाई को दे दो।"

गोहा को एक दोस्त याद आया। वह किसी कब्रस्तान में रहा करता था। जो लाश दफनाना चाहते थे, उसे पैसे देते थे। गोहा अपनी भेड़ को लेकर कब्रस्तानवाले दोस्त के पास गया।

गोहा ने अपने दोस्त से मिलकर कहा "जब अल्लाह याद करेंगे, तो मुझे भी जाना होगा। मुझे दफ़नाने के लिए जो तुम लोगे, उसे मैं पहिले ही दिये देता हूँ। इस भेड़ को तुम रखो।"

दोस्त इसके लिए मान गया।

दो तीन महीने बाद गोहा कब्रस्तान की ओर गया, वहाँ उसे भेड़ दिखाई दी। भेड़ खा पीकर खूब मुटिया गई थी। गोहा को बड़ा अफ़सोस हुआ कि उसने इतनी मोटी ताज़ी भेड़ यूँहि दे दी थी। उसे नहीं मालूम था कि वह कब मरनेवाला था। जल्दी मर जाने की इच्छा भी उसे न थी।

एक दिन रात को कुछ देरी से गोहा अपने दोस्त को देखने गया। "भैय्या, जल्दी चलो, बाहर चलें।"

"कहाँ? क्यों?" गोहा के मित्र ने चकित होकर पूछा।

"मैं देश छोड़कर चला जा रहा हूँ। हुआ यह कि हमारे पड़ोस के लड़के को बीमारी हुई और मैंने उसे थोड़ी-सी दवा दी। वह लड़का मर गया। मेरा यहाँ रहना खतरनाक है।" गोहा ने कहा।

"जब तुम देश छोड़कर जा रहे हो, तो मैं तुम्हारे साथ क्यों आऊँ?" उसके मित्र ने पूछा।

"तुम्हें मुझे दफ़नाना होगा न। मैंने तुम्हें पहिले ही भेड़ दे रखी है।" गोह ने कहा।

दोस्त उबल पड़ा। "तुम अपनी मनहूस भेड़ को ले जाओ। मैं कहीं नहीं आऊँगा।"

गोहा बिना किसी एतराज के भेड़ को घर ले गया।

जैसे को तैसा

एक गाँव में कामेश नाम का एक युवक रहा करता था। उसके माँ बाप गुज़र गये थे। उसने अपनी बहिन सावित्री को पाल पोसकर बड़ा किया और जब उसकी विवाह के लायक उम्र हो गई, तो उसका विवाह करके उसे ससुराल भेज दिया। और स्वयं भी विवाह कर लिया।

कामेश की पत्नी का नाम शान्ति था। पर उसमें शान्ति कहीं न थी। इस कारण, कामेश की जिन्दगी में कोई चैन न थी। जब वह अपनी पत्नी के दिल को पहिचान गया, तो उसने अपनी बहिन को त्यौहारों आदि पर घर बुलाना भी छोड़ दिया।

सावित्री भी जानती थी कि उसका भाई उसे प्यार करता था....पर उसे इस बात का दुख बना रहता कि वह जब वह चाहती, तब अपने माईके नहीं जा पाती थी।

समय बीतता गया। सावित्री तीन बच्चों की माँ बन गई। कामेश के भी बच्चे हुए। कामेश को यह बुरा लगता रहा कि इतने दिन हो गये थे, पर वह अपनी बहिन को अपने घर बुलाकर नहीं ला पाया था।

एक दिन सावित्री के यहाँ से कामेश को एक पत्र मिला। पत्र में लिखा था कि जब उसका पति कहीं दूर गया हुआ था, तो उनका घर जल गया था.... और वह मायके आ रही थी।

यह सोच कि सावित्री उसके घर एक घड़ी भी नहीं रह पायेगी, इससे अच्छा यही था कि वह उनके पास जाये और

शान्ति, मन ही मन कुढ़ती जाती थी कि वह उसके घर खाना खाने के लिए आ गई थी। उसने कहा।

"क्या कहूँ? कैसे कहूँ सूझ नहीं रहा है। कहते हैं....कोई जंगली चूहे हैं, वे झुन्डों में आकर ऊधम मचा रहे हैं। वे, चूल्हा भी नहीं जलाने देते। न रसोई होती है, न खाना ही बनता है, नाकों दम आया हुआ है।" कहकर वह एक बड़े लोटे में पानी ले आई और बच्चों को पानी पीने के लिए कहा।

सावित्री जान गई कि क्यों उसके भाई ने उसे इतने दिन नहीं बुलाया था। उसे बड़ा बुरा लगा। वह बाहर गली में गई। एक गाड़ीवाले से बातचीत की। बच्चों को उसमें सवार करके अपने गाँव की ओर चल दी।

उसके घर-बार का इन्तजाम करे, कामेश इसके लिए पैसा उधार देने के लिए एक और गाँव गया।

वह बाहर गया ही था कि सावित्री इस बीच अपने बच्चों के साथ घर आ ही गई। उसे देखते ही, मानों शान्ति को काठ-मार गया।

सावित्री ने बताया कि उसका घर जल गया था और उसका पति घर में न था और बच्चे खाने के लिए तरस रहे थे। "जरा इन बच्चों को खिलाओ तो....?" सावित्री ने शान्ति से कहा।

कहीं से पैसा उधार लेकर कामेश जब घर वापिस आ रहा था, तो वह रास्ते में सावित्री से मिला और जो कुछ हुआ था, उसने उससे जान लिया। उसने जो कुछ पैसा वह लाया था, उसे दे दिया। "मैं दो दिन में आकर सब इन्तजाम कर दूँगा।

इस बीच तुम इस पैसे को रखो और जैसे तैसे गुज़ारा करो।" वह यह कहकर घर वापिस चला आया।

बातों बातों में भी शान्ति ने उसे नहीं बताया कि उसकी बहिन घर आयी थी।

जब अगले दिन वह घर में नहीं था, तो शान्ति को उसके मायके से एक चिट्ठी मिली, जिसमें लिखा था कि उनका घर भी जल गया था। भगवान की दया से कोई मरा नहीं था। यह पत्र पढ़कर शान्ति जोर जोर से रोने धोने लगी।

इतने में कामेश घर आया। पत्नी को देखकर उसने पूछा—"क्या हुआ है? क्यों रो रही हो?"

शान्ति ने उसे चिट्ठी दिखाकर पूछा—"अभी बैठे ही हुए हो? न मालूम हमारे लोग क्या क्या दिक्कतें झेले रहे होंगे। गाड़ी तय कीजिए, तुरत हमें वहाँ जाकर उनकी मदद करनी होगी।"

"अरे, वैसे ही उनका घर जल गया है, उस हालत में हम जाकर क्यों उनको और तकलीफ़ दें? यह बताओ कि हम कैसे उनकी मदद कर सकते हैं? मदद कर आऊँगा।" कामेश ने कहा।

शान्ति का दुख सहसा जाता रहा। उसने घर में जो कुछ बर्तन थे, उन्हें एक बोरे में डाल दिया। खाने पीने की चीज़ें, दाल, चावल, नून तेल तक उसने अपने माइके भेजे। कामेश उनको एक गाड़ी में लादकर, स्वयं सवार होकर निकल पड़ा।

पर वह अपनी ससुराल नहीं गया। वह अपनी बहिन के घर गया। वह चार दिन वहीं रहा। उसने अपनी बहिन का घर फिर बनवाया और जो कुछ उसकी पत्नी ने दिया था, उससे उसने उनको गुजारा करने के लिए कहा। इस बीच सावित्री

का पति भी घर वापिस आ गया और जो कुछ मदद उसके साले ने की थी, उसके लिए उसने अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

शान्ति ने दो दिन तक अपने पति की प्रतीक्षा की और जब वह नहीं आया, तो वह स्वयं अपने माइके के लिए निकल पड़ी। उसके माइकेवालों का घर जला नहीं था। वे पेड़ों की साया में गुजारा नहीं कर रहे थे और उसका पति भी वहाँ नहीं आया था।

"किसने तुम्हें बताया कि घर जल गया था, क्या कोई सपना देखा था?" शान्ति के माँ बाप ने उसे झिड़का। उन्होंने कहा भी कि तीन चार दिन रहकर वह जाये। पर उसने उनकी बात न सुनी और अपने घर चली गई। कामेश तब तक घर वापिस आ चुका था।

"आप कहाँ गये थे और वे सब चीजें जिन्हें आप ले गये थे, क्या हुईं?" शान्ति ने अपने पति से पूछा।

"क्या करता? मैं तुम लोगों के घर जा रहा था कि रास्ते में हजारों कौव्वे आये और जिस गाड़ी में मैं था, उसे उड़ा ले गये। मैं जैसे तैसे जान बचाकर घर आया हूँ।" कामेश ने कहा।

"अरे कौव्वे! और फिर वे तुम्हारी गाड़ी उड़ाले गये, क्या गजब की बात कर रहे हो? क्या आप पागल हो गये हैं?" शान्ति ने पूछा।

"यह सब कलियुग जो है। अरे पिछले दिन चूहे आये और उन्होंने रसोई तक नहीं करने दी वैसे ही।" कामेश ने कहा।

कामेश ने क्या किया था, शान्ति जान गई। उसके बाद वह सम्भलकर रहने लगी।

देख लिया, देख लिया

एक गाँव में एक नास्तिक रहा करता था। उसका विश्वास था कि भगवान नहीं थे। उसकी पत्नी और उद्दीपक नाम का लड़का भी नास्तिक थे।

एक बार नास्तिक का छोटा बच्चा बीमार पड़ा। दवा वगैरह दी गई। पर कोई फायदा नहीं हुआ। नास्तिक के पड़ोसी शामलाल नाम का शिवभक्त शिवालय से थोड़ी-सी विभूति लाया और उसने उसे बच्चे को लगाकर कहा—"घबराओ मत, बीमारी ठीक हो जायेगी।" बीमारी ठीक भी हो गई।

"मैं यह विश्वास करने के लिए तैयार नहीं हूँ कि यह बीमारी विभूति के कारण ठीक हुई है। शायद इससे पहिले दी गई दवाइयों ने काम किया है।" नास्तिक ने शामलाल से कहा।

नास्तिक के लड़के उद्दीपक को इसके बाद भगवान में विश्वास हो गया। वह भी शामलाल की तरह सवेरे उठता, स्नान कर मन्दिर में शिव की प्रार्थना कर और माथे पर विभूति लगाकर आना चाहता। पर उसे डर था कि ऐसा करने से उसका पिता पीटेगा।

इसलिए उसने शामलाल की सलाह माँगी। "यह काफी है, यदि मन में भक्ति हो। विभूति लगाना काफी नहीं है। निष्टा का अर्थ नियम ही है, भस्म लगाये हुए भक्त का मुख जब तक नहीं देख लूँगा तब तक मैं भोजन नहीं करूँगा, यदि तुमने यह नियम बना लिया, तो यह ही निष्टा है।" शामलाल ने उद्दीपक से कहा।

इसके बाद, जब तक उद्दीपक हर रोज सवेरे शामलाल विभूति लगाकर मन्दिर से आता न दिखाई देता, तो वह पानी भी नहीं छुआ करता। चूँकि शामलाल पड़ोसी था, इसलिए उद्दीपक की निष्ठा अच्छी तरह चलती रही।

कुछ दिन बाद एक रोज़ शाम को शामलाल उद्दीपक को दिखाई दिया। उसने पूछा "क्यों, निष्ठा चल रही है?"

"चल रही है। जैसा आपने कहा था, जब तक मैं भक्त का चेहरा देख नहीं लेता, तब तक मैं कुछ नहीं खाता। निष्ठा निर्विघ्न रूप से चल रही है।"

"अच्छा है। तुम्हारा कल्याण होगा। चलो शिवालय चलें।" शामलाल ने कहा।

दोनों शिवालय तक गये तो पर उद्दीपक ने कहा कि वह मन्दिर में नहीं आयेगा, क्योंकि उसे शिव की पूजा करनी नहीं आती थी, वह शामलाल के बाहर आने तक, मन्दिर के बाहर पेड़ के नीचे खड़ा रहा। वह खड़ा खड़ा पैर से मिट्टी कुरेद रहा था कि कोई कड़ी चीज़ पैर में लगी। जब उसने उठाकर देखा, तो वह सोने का सिक्का था।

जब शामलाल मन्दिर से बाहर आया, तो उसने वह सिक्का उसे दिखाया और

बताया कि उसे पेड़ के पास वह मिला था।

"देखा, तुम्हारी निष्ठा सफल हो रही है।" शामलाल ने कहा। जब उसने उस सिक्के को देखा तो पता लगा कि वह बहुत पुराना था। यह सोचकर कि जिस जगह वह सिक्का मिला था, वह शायद कोई खजाना ही गड़ा हो, उसने उस पेड़ को याद कर लिया।

अगले दिन शामलाल सवेरे के झुटपुटे में ही निकल गया, उसने उस पेड़ के नीचे जब खोदा, तो उसे दो कलश, एक दूसरे पर रखे दिखाई दिये। शामलाल ने उन्हें ऊपर निकाला और गढ़ा भर दिया। वह उन्हें घर ले जाने की सोच रहा था कि उद्दीपक ने एक पेड़ के पीछे से देखकर कहा—"देख लिया, देख लिया।" कहकर वह जाने लगा।

उसने शामलाल के मुँह को देखा था, न कि उसके निकाले हुए कलशों को। जब उसे रोज की तरह शामलाल नहीं दिखाई दिया, तो वह उसे ढूँढ़ने निकला और पेड़ों के पीछे आ खड़ा हुआ था। पर शामलाल यह सोच घबरा गया कि उद्दीप को उसका रहस्य मालूम हो गया था। उसे एक कलश देते हुए कहा—"यह ईश्वर का प्रसाद है। एक कलश तुम्हारे लिए और एक मेरे लिए।"

परन्तु ईश्वर का प्रसाद दोनों को बराबर नहीं मिला। शामलाल के कलश में निरे ठीकरे रखे थे और उद्दीपक के कलश में सौ सोने के सिक्के थे।

जब उद्दीपक के पिता को पता लगा कि उसे ईश्वर प्रसाद के रूप में सिक्कों का कलश मिल गया था, तो वह भी नास्तिक न रहकर, भक्त हो गया।

ईर्ष्या

एक गाँव में हनुमान नाम का एक गरीब रहा करता था। न उसका कोई घरबार था, न कोई भाई बन्धु ही। जो कोई कुछ काम बताता, तो वह कर देता। सब कोई उसे अच्छा बताते।

हनुमान को सब लोग तो चाहते थे, पर पूर्णसिंह उसे बिल्कुल न चाहता था। उसके पास थोड़ी बहुत सम्पत्ति थी। उसे हमेशा कोई न कोई चिन्ता बनी रहती और जब वह हनुमान को निश्चिन्त पाता और हर किसी को उसकी प्रशंसा करता सुनता तो, उसको चिढ़ लगती। वह इस ताक में था कि हनुमान पर कोई दोष आरोपित करके उसको नीचा दिखाया जाय।

कोई त्यौहार आया। पूर्णसिंह त्यौहार के लिए कपड़े खरीदने की सोचकर, जेब में कुछ पैसे डालकर सवेरे ही हाट के लिए निकल पड़ा। गाँव से बाहर निकलते ही उसे हनुमान दिखाई दिया।

"अरे हनुमान, कहाँ जा रहे हो!" पूर्णसिंह ने पूछा।

"पटवारी ने हाट में कुछ खरीदकर लाने के लिए कहा है।" हनुमान ने कहा।

"मैं भी हाट जा रहा हूँ। चलो, साथ चलेंगे।" पूर्णसिंह ने कहा।

जब दोनों साथ जा रहे थे, तो पूर्णसिंह को एक चाल सूझी। अगर उसकी चाल चल गई, तो उसने सोचा तो गाँववाले जरूर उसे डाँटेंगे, धमकेंगे। उसे यह भी लगा कि हनुमान को नीचे दिखाने का इससे अच्छा मौका नहीं मिलेगा।

जब धूप बढ़ गई, तो पूर्णसिंह ने हनुमान से कहा—"अब रास्ता अधिक नहीं रह गया है। आओ, इस पेड़ के नीचे थोड़ी देर बैठ जायें।"

हनुमान को यह बात जँची। उसने अपना अंगोछा निकाला, जमीन पर उसे बिछाया, बेफिक्र तो था ही, वह तुरत सो गया और खुर्राटे मारने लगा। पूर्णसिंह ने उसकी जेब से पैसे निकाल लिये और अपनी जेब में रख लिये।

पूर्णसिंह ने यह काम लालच में नहीं किया था। अगर हनुमान, पटवारी के लिए समान खरीद कर न ले गया तो जरूर डाँट खायेगा। कुछ लोग तो अवश्य कहेंगे ही कि उसने पटवारी के रुपये चुरा लिये थे। अगर हनुमान को उस पर शक हुआ भी तो, वह उसे चोर बताने की हिम्मत नहीं करेगा।

जब हनुमान सो रहा था, अगर तभी वह चला जाता, तो उस पर शक करने की गुंजाईश होती। इसलिए हाट तक उसके साथ जाना और वहाँ उससे अलग हो जाना, उसने अच्छा समझा। यह सोचा पूर्णसिंह ने भी पीठ सीधी

की और थोड़ी देर में आराम से सो गया।

जहाँ वे सोये थे, उस पेड़ के ऊपर दो बन्दर थे। उन्होंने हनुमान की जेब से पूर्णसिंह को रुपये निकालते देख लिया था। आखिर वे बन्दर ही तो थे, जब पूर्णसिंह सो गया, तो वे नीचे उतरे, तो उन्होंने पूर्ण के जेब में से रुपये निकाले और उन्हें हनुमान के जेब में रख दिये। फिर पेड़ पर चढ़कर यूँ हँसने लगे, जैसे कोई बड़ा काम किया हो।

इसके कुछ देर बाद, पूर्णसिंह और हनुमान सोकर उठे। और हाट की ओर चलने लगे। जब दोनों हाट पहुँचे, तो पूर्णसिंह यह कहकर कि "अब तुम अपना काम देखो।" खिसक गया।

वह कपड़े की एक दुकान पर गया। जोड़ी धोती का सौदा किया, जब उसने पैसे देने के लिए जेब में हाथ डाला तो जेब खाली थी।

हनुमान ने पटवारी के लिए सारी चीज़ें खरीद लीं, फिर उसने अपनी जेब टटोली तो पैसे बचे थे। उन पैसे से उसने अपने लिए कपड़े खरीद लिये और पटवारी के पास जाकर कहा—"आज मेरे भाग्य के क्या कहने? न मालूम मेरे जेब में इतने सारे पैसे कहाँ से आ गये? मैंने त्यौहार के लिए कपड़े खरीद लिये हैं?"

पूर्णसिंह खाली हाथ पैर घसीटता घसीटता गाँव पहुँचा, उसने किसी से भी न कहा कि उसके पैसे गुम हो गये थे। उसने सोचा कि हनुमान जैसे भले आदमी का बुरा करने का उसे अच्छा शाप मिल गया था।
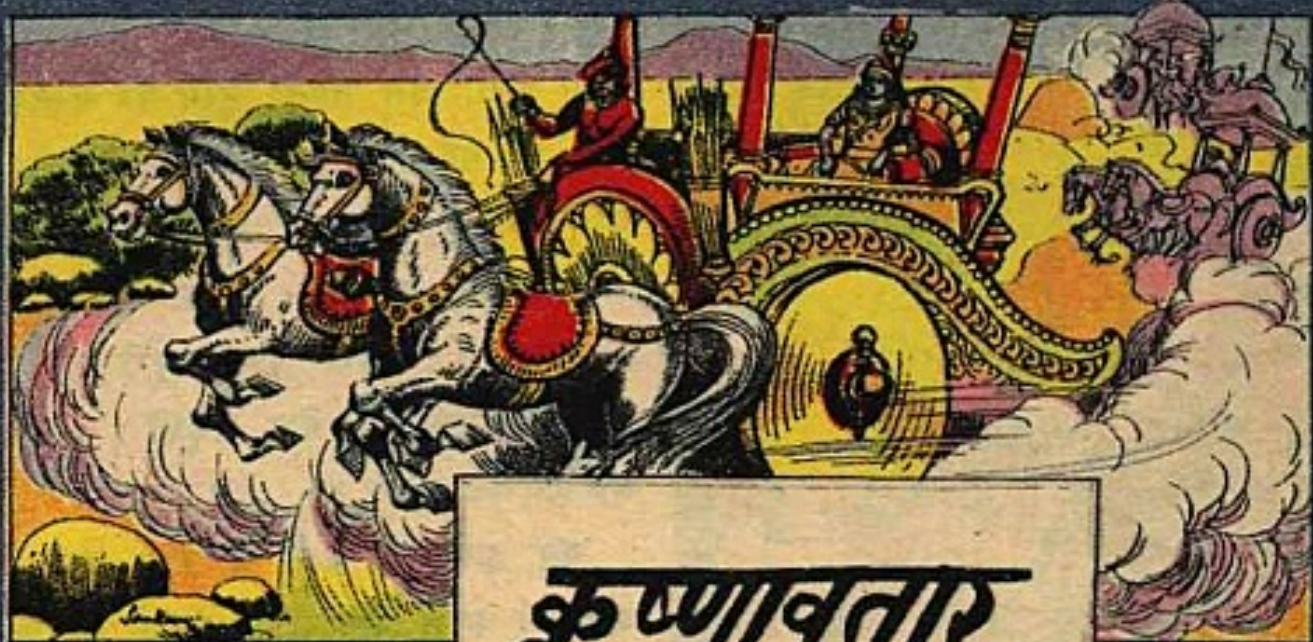
रुक्मणी के होनेवाले विवाह के बारे में बताकर जब नारद चला गया, तो कृष्ण ने अपने लोगों से कहा–"नारद मुनि ने जो हमारे कल्याण के लिए बातें कही थीं, वे सब आपने सुन ही ली हैं। अब देरी किस लिए? चलो काम पर लग जायें। तुरत चलो कुन्डिनपुर चलें। आप अपने वाहन और सेनाओं को सन्नद्ध करो। जब सेना निकले तो देखिए कि सेना के आगे सात्यकी, मध्य में बलराम और अन्त में उग्रसेन हों। मैं सब हथियार लेकर, दारक के साथ आगे चला जाऊँगा। शिशुपाल और रुक्मी आदियों की खबर लेकर रुक्मणी को पा लूँगा।"

यात्रा की घोषणा की गई। यादव यात्रा की तैयारी में लग गये। कृष्ण भी अपने को अलंकृत करके रथ में निकल पड़ा।

वह दूल्हे की तरह सुशोभित था। वैभवपूर्वक यात्रा करके, विदर्भ देश में पहुँचा।

वह कुन्डिनपुर पहुँच रहा था कि रुक्मणी का पिता भीष्मक अगवानी करने आया। उसने उसका आदर सत्कार करके नगर के बाहर के जनवास में उसे ठहराया।

विवाह के लिए आये हुए राजा, कृष्ण को देखकर तरह तरह की बातें करने लगे।

१७. रुक्मणी का अपहरण

"शिशुपाल कृष्ण की बुआ का लड़का है न? शायद उसकी शादी देखने आया है।" कई ने कहा।

"नहीं...उस कृष्ण की जरासन्ध और शिशुपाल से बिल्कुल नहीं पटती है। फिर वह क्यों आया है?" कई और ने उत्सुकता प्रकट की।

"मगर यह भी तो सुना गया है कि रुक्मणी कृष्ण को बहुत चाहती है।" कई और ने कहा।

जब रुक्मणी को मालूम हुआ कि यादवों को लेकर कृष्ण आया था, तो उसको ऐसा लगा, जैसे तपती भूमि पर यकायक वर्षा आ गई हो। "मुझे इन कष्टों से बचाने के लिए कृष्ण आये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। मेरा जन्म सफल हो गया है। मेरी इच्छा पूरी हो गई है। मैं उसे कब देख सकूंगी।" उसने मन ही मन सोचा।

वह कृष्ण के बारे में तरह तरह के अनुमान करने लगी। सहेलियों से उसने उसकी बातें बार बार कहीं। उसका दु:ख जाता रहा। उसके चेहरे पर नई रौनक आ गई।

कृष्ण ने भी और किसी बात में कोई रुचि नहीं दिखाई। वह भी रुक्मणी के बारे में सोचने लगा। मैं उसे कैसे देख सकूंगा? उसका अपहरण किस प्रकार किया जाय? कैसे शत्रुओं का सामना किया जाय? यह बात सच है कि नहीं कि वह मुझे चाहती है?

"कुछ भी हो...अगर उसने मुझे प्रेम की नजर से देखा, तो चाहे देवता ही रोकें, मैं उसे जरूर पाकर रहूंगा।" कृष्ण ने सोचा।

प्रात:काल हुआ। भौरें कमलों पर मंडराने लगे। चक्रवाकों का अन्धापन

जाता रहा। हंस जलाशयों में तैरने लगे। सूर्योदय हुआ।

कृष्ण ने नित्यकृत्य से निवृत्त होकर अपना अलंकरण किया। अपने लोगों को लेकर, वह रथ में निकला। रुक्मणी को देखने की इच्छा उसमें निरन्तर प्रबल होती जाती थी।

राजमहल में सहेलियों ने रुक्मणी को खूब सजाया सँवारा। अलंकरण के समाप्त होने पर, वह एक सोने की पालकी में सवार होकर, सहेलियों के साथ नगर के बाहर गौरी के मन्दिर में पूजा करने निकली।

वह मन्दिर के पास पालकी से अन्दर सहेलियों के साथ गई। देवी से उसने प्रार्थना की—"कृपा करो कि मेरे पति कृष्ण ही हों।"

रुक्मणी जब मन्दिर से बाहर आ रही थी कि कृष्ण भी वहाँ आया और पहिली बार उसने रुक्मणी को देखा। उसे रुक्मणी ऐसी लगी मानों दूध के समुद्र से लक्ष्मी निकल रही हो। उसे ऐसा लगा कि जैसे तीनों लोकों में उसके समान कोई सुन्दर न थी। उसके बारे में सुनकर तो वह अपने प्रेमावेश को काबू कर सका था। पर उसको देखकर उनका निग्रह करना उसके लिए सम्भव न हो सका।

रुक्मणी को अपना बनाने के लिए उसको आवश्यक स्थल और समय मिल गया था। इस तरह के अवकाश को जाने देना उसे मूर्खता-सी लगी।

उसी समय कृष्ण ने भी रुक्मणी को पहिली बार देखा, सहेलियों ने बताया कि वह ही कृष्ण था। उसने उसको भरपूर देखा।

वह जिसका इतने दिनों से ध्यान कर रही थी, उसे यकायक प्रत्यक्ष देखकर, उसके आश्चर्य की, आनन्द की कोई सीमा न रही, वह आत्मविमोर हो गई। उसको इस स्थिति में देखकर उसकी सहेलियाँ घबरा उठीं।

इतने में बलराम, कृष्ण से आ मिला। कृष्ण ने जो कुछ करना चाहता था, उसके बारे में ठीक ठीक अपने भाई को बताया।

फिर यकायक वह रुक्मणी के पास गया। उसका आलिंगन करके, उसे लाकर रथ में बिठा दिया। रुक्मणी की सहेलियाँ डर गईं। समीप खड़े सैनिक कृष्ण की ओर भागे।

बलराम ने एक पेड़ उखाड़ा और उससे, पास आते सैनिकों, रथों, घोड़ों और हाथियों को खूब मारा। उन्हें तितर बितर कर दिया।

इस घटना के बारे में सुनकर उग्रसेन, सात्यकी, शतद्युम्न, विदूरथ, प्रसेनजित आदि यदुवृष्णि भोजान्धक वीर, अपनी अपनी सेना लेकर बलराम की सहायता के लिए गये और उन्होंने कृष्ण से कहा-"तुम इस कन्या को द्वारका ले जाओ। यहाँ के लोगों की खबर हम ले लेंगे।"

ये जब युद्ध की तैयारी कर रहे थे, तो मृत्यु से बचे, रुक्मणी के अंगरक्षकों ने रुक्मणी के अपहरण के बारे में भीष्मक, जरासन्ध, शिशुपाल और उनके साथ आये हुए राजाओं को बताया। सब यह सुनकर बड़े चकित हुए। "इतने महायोद्धाओं के यहाँ होते हुए कृष्ण ने यह काम किया है। उसे कितना अभिमान! क्या दुस्साहस है यह?"

जरासन्ध गुस्से में लाल पीला हो रहा था। उसने कहा–"एक ग्वाले का लड़का इस तरह आया, जैसे वह सारे संसार में सब से अधिक पराक्रमी हो और मेरे सब प्रयत्नों को विफल कर गया। मैं अपनी सेना लेकर उस पर आक्रमण करूँगा। अगर आप चाहें तो आप भी मदद के लिए आइये।"

जरासन्ध ने प्रतिज्ञा की कि यदि कृष्ण, समुद्र के परकोटेवाले द्वारका में भी जा पहुँचा, तो भी उसे और उसके सब सम्बन्धियों को मारकर द्वारका को ध्वंस करके रुक्मणी को लाऊँगा।"

पौन्ड्रक वासुदेव ने जरासन्ध को रोकते हुए कहा–"जब तुम्हारा भृत्य यहाँ है, तो तुम व्यर्थ क्यों जाते हो? मैं जाकर उस कृष्ण के टुकड़े टुकड़े करके, उसे जंगली पक्षियों को खिला दूंगा। भूमि पर दो वासुदेव कैसे रह सकते हैं? इस गल्ती को ठीक करने के लिए और तुम्हें खुश करने के लिए मुझे बड़ा अच्छा मौका मिला है। और क्या चाहिए?"

इतने में शिशुपाल ने एक हथियार हाथ में लेकर, खड़े होकर उसने जोर से

कहा–"ठहरो...कोई भी न हिलो। यह अपमान मेरा है। "मैं विवाह के उत्साह में आया था, इसने मेरा उत्साह भंग किया है। मैं इस एक शस्त्र से कृष्ण और उसके यादवों का नामों निशां मिटा दूंगा। जरासन्ध के भृत्य के तौर पर बड़ी कीर्ति पाऊँगा। अगर कोई सचमुच क्षत्रिय हो, तो क्या वह इस प्रकार दूसरे की पत्नी के लिए ललचायेगा? इस यादव गोत्रवाले ने बड़ा नीच कार्य किया है। वह पशुओं के बीच बड़ा हुआ है इसलिए पशुओं की तरह ही व्यवहार
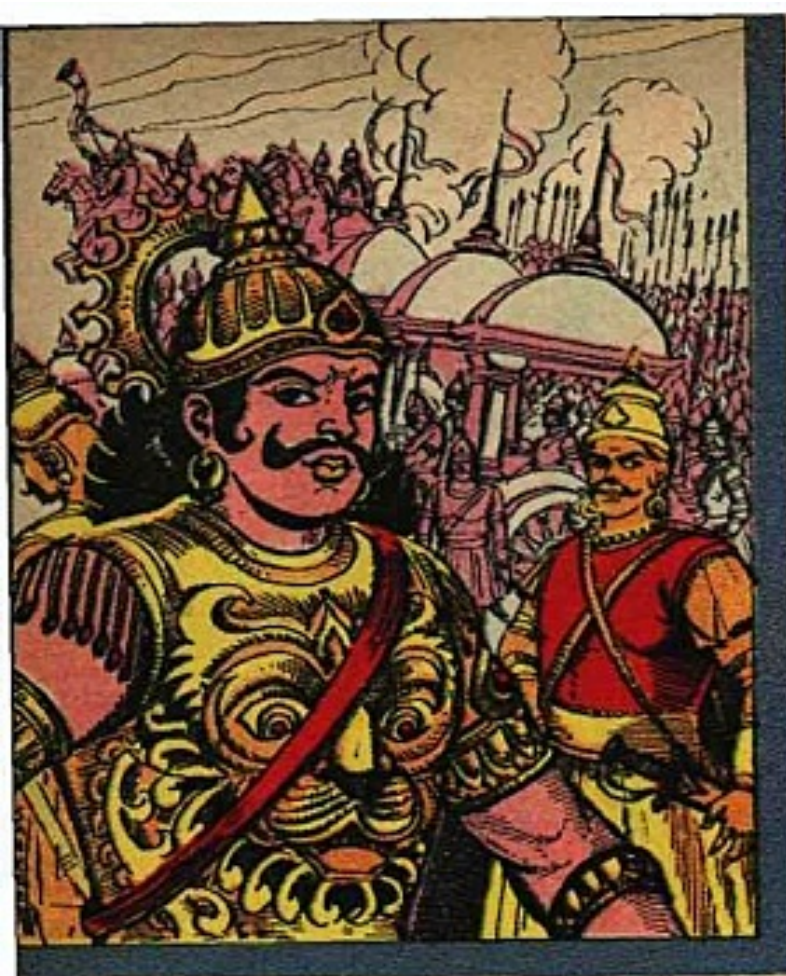
करेगा। कृष्ण को मारकर रुक्मणी को लाना मेरा काम है।"

इसके बाद जरासन्ध आदि राजा कवच धारण करके रथों पर सवार होकर युद्ध के लिए तैयार हो गये। इसी तरह सेना भी, भेरी और शंख बजाती, जोर शोर के साथ निकल पड़ी। जल्दी ही वे रथ में जाते कृष्ण और उसके पीछे जाती यादव सेना तक पहुँचे।

बलराम आदि ने अपनी सेना रोककर, जरासन्ध की सेना के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। यादवों की सेना छोटी थी और जरासन्ध की सेना बड़ी थी। परन्तु जरासन्ध के लोग ही अधिक मारे गये। दोनों तरफ के वीरों ने द्वन्द्व युद्ध किया, सात्यकी और जरासन्ध में भयंकर युद्ध हुआ। शक्रदेव और अक्रूर ने दन्तवक्त्र से युद्ध किया। शिशुपाल अकेला तीन यादव वीरों से लड़ा। कृतवर्मा और पौन्ड्रक वासुदेव में युद्ध हुआ।

सब से अधिक बलराम ने शत्रु नाश किया। जरासन्ध ने भी खूब जोर शोर से युद्ध किया। आखिर बलराम ने ही उसे गदा से मूर्छित कर दिया। तुरत जरासन्ध का सारथी, उसे रथ में बिठाकर दूर ले गया। यह देख सेना भी भागने लगी। भागते सैनिकों को सात्यकी ने भी खूब खदेड़ा। सात्यकी का शंख बजाना सुनकर, कृष्ण ने अनुमान किया कि जरासन्ध भगा दिया गया था, इसलिए उसने भी अपना पाँचजन्य बजाया।

कृष्ण, रुक्मणी का अपहरण करके ले जा रहा था, जब यह समाचार सुनकर जरासन्ध आदि अपनी सेना लेकर जा रहे थे, तब रुक्मि राजमहल में था। उसने अपने पिता और बन्धुओं के समक्ष

शपथ ली कि जब तक वह युद्ध में कृष्ण को नहीं मार देगा और रुक्मणी को वापिस नहीं लायेगा, तो नगर में वापिस कदम नहीं रखेगा। वह गद, कैशिक, आदि योद्धाओं को लेकर, युद्ध के लिए तैयार होकर निकल पड़ा। उसके साथ दक्षिण देशों के राजा भी थे।

उन्हें कृष्ण का रथ नर्मदा के तट पर कुछ दूरी पर जाता दिखाई दिया। रुक्मि बाकी लोगों को पीछे छोड़कर, बहुत तेजी से रथ में आगे बढ़ा और कृष्ण के रथ के सामने जाकर उसने कहा "कहाँ रहे हो, ग्वाले के बच्चे? दूसरों की पत्नी चुरानेवाले, मैं रुक्मि हूँ। यदि जीवित रहना चाहते हो, तो रुक्मणी को तुरत दे दो। नहीं तो मेरे साथ युद्ध करो।" वह कृष्ण पर बाणों की वर्षा करने लगा। कृष्ण ने क्षण में ही उसके सारथी को मार दिया और उसके शरीर पर बाण लगाये।

रुक्मि की यह दुस्थिति देखकर, दक्षिण देश के राजा अपने मित्र को घेरकर कृष्ण से लड़ने के लिए तैयार हो गये। कृष्ण और उनमें भयंकर युद्ध हुआ। कुछ देर बाद रुक्मी उठा, एक और रथ में आकर कृष्ण से युद्ध करने लगा। कृष्ण ने उसकी छाती पर तीन बाण छोड़कर उसे मूर्छित कर दिया। बेहोश होकर भाई को भूमि पर गिरते देख, रुक्मणी भी रथ में एक ओर गिर-सी गई और रोने लगी।

कृष्ण ने रुक्मणी का आलिंगन करके, रुक्मि को अभय दिया और आश्वासन दिया वह उसका कुछ न बिगाड़े। रथ को मोड़कर वह अपने नगर की ओर चल दिया।

अरण्य पुराण

[२०]

परकोटे के पास खाई में बैठकर कावा और बघेल उसी मेघ की ओर देख रहे थे। वे दोनों जानते थे कि सामने के बन्दरों से भिड़ पड़ना खतरे से खाली न था।

"मैं पश्चिम की ओर की दीवार के ऊपर से खिसककर आता हूँ। बन्दरों का मुझ पर अधिक संख्या में आक्रमण करने का मौका नहीं है। परन्तु...." कावा ने कहा।

"मुझे मालूम है। अगर भालू यहाँ होता, तो कितना अच्छा होता। पर क्या किया जाये? चन्द्रमा पर उस बादल के आते ही, मैं भी अन्दर कूद जाऊँगा।" बघेल ने कहा।

"शिकार करना है।" कहता कावा पश्चिम के दीवार की ओर रेंगता चला गया।

चान्द पर बादल छा गया। बघेल चुपचाप अन्दर कूदा, और मौवली के चारों ओर बैठे बन्दरों को इधर उधर जोर जोर से मारने लगा।

बन्दर गुस्से में और डर में हाहाकार करने लगे।

"एक ही है, मारो, मारो।" बन्दर चिल्लाये, वे झुण्डों में आये। और बघेल पर हमला करने लगे। उसे मारने खरोंचने लगे।

पाँच छः बन्दरों ने मौवली को जोर से पकड़ लिया। उसे संगमरमर के मण्डप की ओर खींच ले गये और उसके छेद में से उसे अन्दर धकेल दिया।

अन्तिम पृष्ठ

"वहीं रहो। तुम्हारे मित्रों को मारकर हम आकर तुम से खेलेंगे। अगर इस बीच तुम्हें जहरीले कीड़ों ने न मारा तो...." बदरों ने मौवली से कहा।

मौवली ने साँप की भाषा में कहा—"हम और तुम एक हैं।" मण्डप के अन्दर इधर उधर पड़े कूड़े पर किसी का रेंगना और फुँकारना उसे लगातार सुनाई पड़ रहा था।

"फण गिरा दो।" एक साथ छः साँप बोले। हिलो मत भाई, हमें कहीं कुचल न देना।" उन्होंने मौवली से कहा।

दीवारों के छेदों में से, मौवली बाहर चुपचाप देखने लगा, वहाँ बघेल से बन्दर लड़ रहे थे। बन्दर आते जाते थे और बघेल पर झपटते जाते थे, उसे इधर उधर खींचते जाते थे। बघेल भी पैतरें मारता अपने को बचाता, जी जान से कूद कूदकर लड़ रहा था।

मौवली ने सोचा कि बघेल अकेला नहीं आयेगा, कहीं आसपास भालू होगा। उसने कहा—"पानी के गमलों की ओर लुढ़को पानी के होज़ों में कूद जा।"

मौवली की आवाज सुनते ही, बघेल जान गया कि वह कुशल था, वह और जोर शोर से लड़ने लगा। वह इधर उधर बन्दरों को पकड़ता मारता पानी के होजों की तरह कूदने लगा।

इतने में जंगल के पास से दीवारों के पास से, भालू का हुँकार सुनाई दिया। वह, जितनी तेज़ी से वह आ सकता था, वह वहाँ आया।

"आ गया बघेल। मैं ऊपर आ रहा हूँ। ये पत्थर मेरे पैरों के नीचे टिक नहीं रहे हैं। अरे ठहरो भी बन्दरो।" कहता भालू अन्दर चला आया।

उसका दिखाई पड़ना था कि बन्दरों ने बादलों की तरह उसे घेर लिया। भालू जो कोई बन्दर मिलता, उसे घोंटकर मार देता, उसके पंजे बन्दरों पर लगातार पड़ते जाते थे।

पानी में किसी बड़े पत्थर के गिरने की-सी आवाज हुई। मौवली जान गया कि बघेल पानी के होज में जा कूदा था। बन्दर अब उसके पास नहीं जा सकते थे। वे पानी के चारों ओर खड़े हो गये और हाँफते बघेल की ओर ध्यान से देखने लगे।

यह सोचकर कि मौका निकालकर कावा खिसक गया होगा, बघेल और साँपों से अभय माँगने लगा। उसकी यह बात सुनकर भालू अपनी हँसी न रोक सका। यद्यपि वह एक ओर बन्दरों से भिड़ा हुआ था।

परन्तु कावा भागा नहीं था। पश्चिम की दीवार पर चढ़ने के लिए उसे इतना समय लग गया था। वह अपने भारी शरीर को लेकर जब दीवार के ऊपर से नीचे कूदा, तो दीवार से एक बड़ा पत्थर भी नीचे खिसक गया। उस जगह से बन्दरों की जगह तक ढलान थी। कावा के लिए यह अच्छा था। कावा ने एक बार अपने शरीर को इधर उधर घुमाकर देखा कि कहीं उसे चोट तो नहीं लग गई थी।

भालू से बन्दर युद्ध कर रहे थे। बघेल की होज के चारों ओर खड़े बन्दर चिल्ला रहे थे। चमगीदड़ "मान्ग" करता, ऊपर मँडरांता, जो कुछ नीचे गुजरता, जंगल के बासियों को समझा समझाकर बता रहा था। अरण्यवासी इस मुठभेड़ के बारे में ध्यान से सुन रहे थे। हाथी जोर

से गरजा भी। वन में बन्दर जहाँ जहाँ थे, वे उठ बैठे और टहनियों में कूदते कूदते अपने लोगों की मदद के लिए खण्डहर की ओर जाने लगे। आसपास के पेड़ों पर जो पक्षी सो रहे थे, वे भी जाग उठे।

कावा ऊँचाई पर से बाण की तरह तेज़ी से भागता आया। वह जिस पर चोट करता, उस पर मानों पहाड़-सा गिरता, क्योंकि उसका शरीर बड़ा भारी था। चार पाँच फीटवाला अजगर ही किसी आदमी के छाती पर अपना सिर रखे, तो वह गिर जायेगा। यह कावा, तो तीस फीट का था।

कावा की पहिली चोट भालू के चारों ओर खड़े बन्दरों पर पड़ी। उसे दूसरी बार चोट करने की जरूरत ही नहीं पड़ी। "कावा, कावा, भागो, भागो।" चिल्लाते, बन्दर तितरबितर होकर भाग निकले।

कावा किस जमाने का था! उसके बारे में बूढ़े बुजुर्ग बन्दर भी कहानियाँ सुनाया करते थे। कावा बड़ा चालाक था। वह चुपचाप टहनी पर आकर बड़े से बड़े बन्दर को भी पकड़ सकता था। पेड़ पर वह इस तरह रहकर धोखा दे सकता था, जैसे वह कोई सूखी टहनी हो। उसकी शक्ति के बारे में कोई बन्दर नहीं जानता था। कोई भी बन्दर उसके चुंगल में पड़कर जिन्दा बाहर नहीं निकला था। कोई भी कावा की ओर धीरज करके न देख सकता था। इसलिए बन्दर भाग निकले। दीवारों, टीलों, छतों पर जा बैठे।

७४. "डंडर" आलय

मिश्र के प्राचीन भवनों में एक है। इस मन्दिर के मण्डप में २४ स्तम्भ हैं। इसे मिश्र के फराहो शासकों ने ईसा से एक सदी पूर्व बनवाया था। यह अभी तक पूरी तरह खण्डहर नहीं हुआ है। इस मन्दिर की दीवारों पर ही क्लियोपात्रा का चित्र है।

Photo by Anant Desai
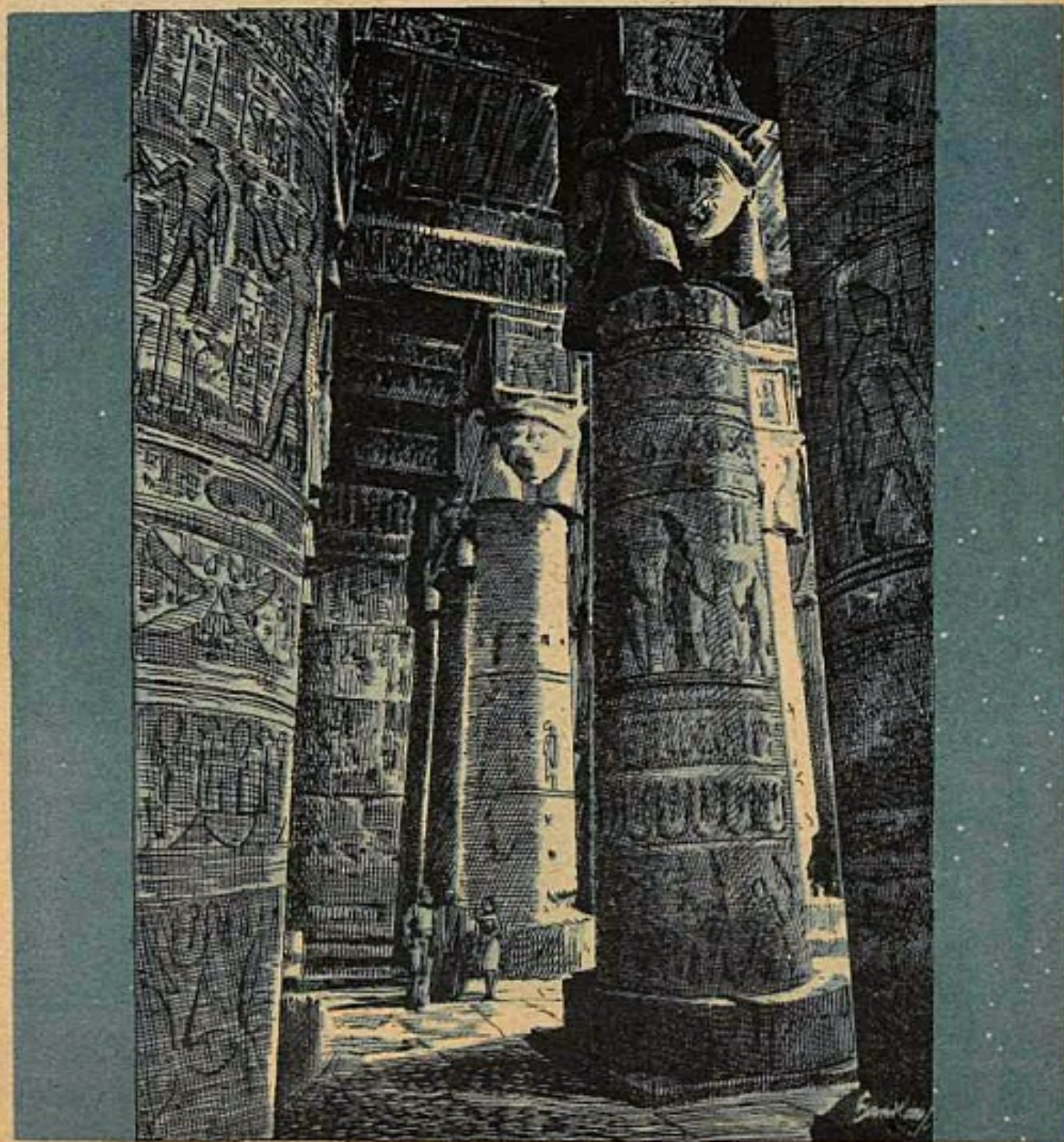
पुरस्कृत परिचयोक्ति

चाहे बालक हो या श्वान...

प्रेषक : अशोक नेरूला - चंदीगढ़

Photo by Anant Desai

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

...सब में व्यापक है भगवान !

प्रेषक :
अशोक नेरूला - चंडीगढ

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

अप्रैल १९६८ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें !

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिखकर निम्नलिखित पते पर तारीख ७ फरवरी १९६८ के अन्दर भेजनी चाहिए।

फ़ोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन,
वड़पलनी, मद्रास-२६

फरवरी – प्रतियोगिता – फल

फरवरी के फ़ोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं।
इनके प्रेषक को १० रुपये का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो: चाहे बालक हो या श्वान...
दूसरा फ़ोटो: ...सब में व्यापक है भगवान!

प्रेषक: अशोक नेरूला,
घर नं. ३७६२, सैक्टर २२-डी, चंडीगढ़

Printed by B. V. REDDI at The Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for Sarada Binding Works, 2 & 3, Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'